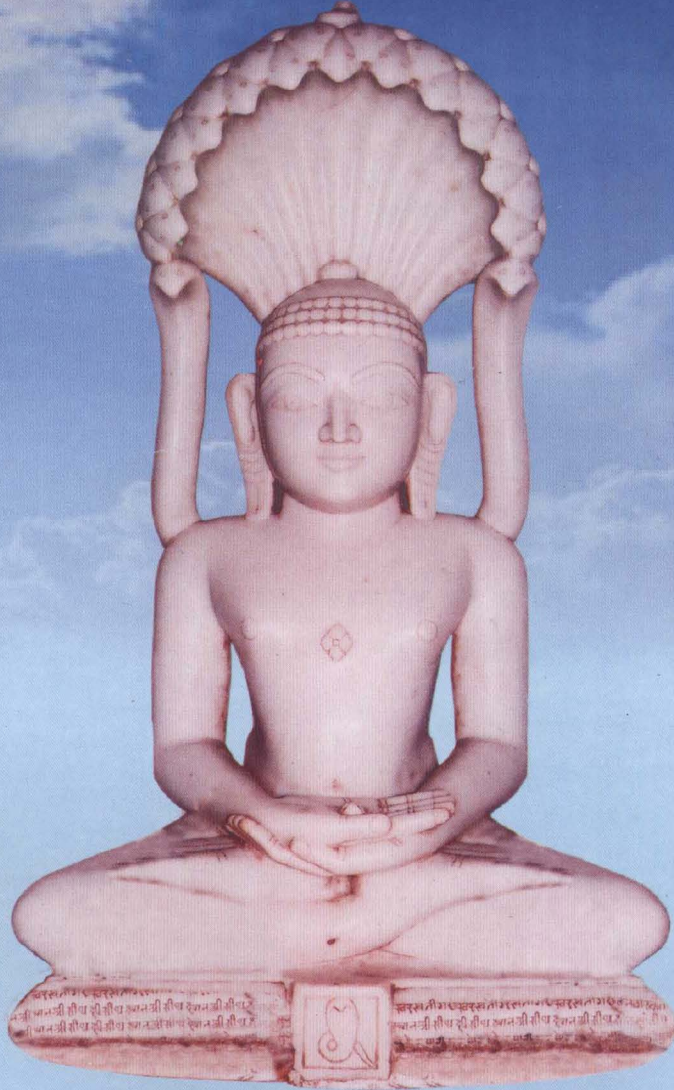


जिनभाषित

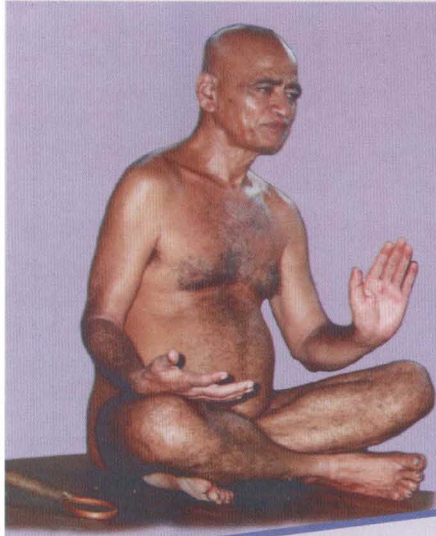
वीर निर्वाण सं. 2533



श्री दि. जैन सिद्धक्षेत्र मांगीतुंगी
(ता. सटाणा, जिला-नासिक, महाराष्ट्र) में विराजमान
भगवान् पार्श्वनाथ का अतिसुन्दर बिम्ब

आश्विन, वि.सं. 2064

अक्टूबर, 2007



आचार्य श्री विद्यासागर जी के दोहे

91

पुण्य कर्म अनुभाग को, नहीं घटाता भव्य।
मोहकर्म की निर्जरा, करता है कर्तव्य ॥

92

तभी मनोरथ पूर्ण हो, मनोयोग थम जाय।
विद्यारथ पर रूढ़ हो, तीन लोक नम जाय ॥

93

हुआ पतन बहुबार है, पा कर के उत्थान।
वही सही उत्थान है, हो न पतन-सम्मान ॥

94

सौरभ के विस्तार हो, नीरस ना रस कूप।
नमूँ तुम्हें तुम तम हरो, रूप दिखाओ धूप ॥

95

नहीं सर्वथा व्यर्थ है, गिरना भी परमार्थ।
देख गिरे को, हम जगें, सही करें पुरुषार्थ ॥

96

गगन-गहनता गुम गई, सागर का गहराव।
हिला हिमालय दिल विभो! देख सही ठहराव ॥

97

निरखा प्रभु को, लग रहा, बिखरा सा अघ-राज।
हलका सा अब लग रहा, झलका सा कुछ आज ॥

98

ईश दूर पर मैं सुखी, आस्था लिए अभंग।
ससूत्र बालक खुश रहे, नभ में उड़ पतंग ॥

99

हृदय मिला पर सदय ना, अदय बना चिर-काल।
अदया का अब विलय हो, चाहूँ दीन-दयाल ॥

100

चेतन में ना भार है, चेतन की ना छाँव।
चेतन की फिर हार क्यों? भाव हुआ दुर्भाव ॥

101

चिन्ता ना परलोक की, लौकिकता से दूर।
लोक-हितैषी बस बनूँ, सदा लोक से पूर ॥

स्थान एवं समय संकेत

102

रामटेक में, योग से, दूजा वर्षायोग।
शान्तिनाथ की छाँव में, शोक मिटे अघ रोग ॥

103

गगन-गन्ध-गति-गोत्र का, भादों-पूनम-योग।
'पूर्णेदय' पूरण हुआ, पूर्ण करें उपयोग ॥

अंकानां वामतो गतिः अनुसार

गोत्र=२, गति=५, गन्ध=२, गगन=०

भादों सुदी १५ वीर निर्वाण संवत् २५२०

दिनांक १९.९.१९९४, सोमवार

श्री दि. जैन अतिशयक्षेत्र शान्तिनाथ, रामटेक

'पूर्णेदयशतक' से साभार

जिनभाषित

सम्पादक

✓ प्रो. रतनचन्द्र जैन

कार्यालय

ए/2, मानसरोवर, शाहपुरा
भोपाल- 462 039 (म.प्र.)
फोन नं. 0755-2424666

सहयोगी सम्पादक

पं. मूलचन्द्र लुहाड़िया, मदनगंज किशनगढ़
पं. रतनलाल बैनाड़ा, आगरा
डॉ. शीतलचन्द्र जैन, जयपुर
डॉ. श्रेयांस कुमार जैन, बड़ौता
प्रो. वृषभ प्रसाद जैन, लखनऊ
डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती', बुरहानपुर

शिरोमणि संरक्षक

श्री रतनलाल कँवरलाल पाटनी
(मे. आर.के.मार्बल)
किशनगढ़ (राज.)
श्री गणेश कुमार राणा, जयपुर

प्रकाशक

सर्वोदय जैन विद्यापीठ
1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी,
आगरा-282 002 (उ.प्र.)
फोन : 0562-2851428, 2852278

सदस्यता शुल्क

| | |
|-----------------|--------------|
| शिरोमणि संरक्षक | 5,00,000 रु. |
| परम संरक्षक | 51,000 रु. |
| संरक्षक | 5,000 रु. |
| आजीवन | 1100 रु. |
| वार्षिक | 150 रु. |
| एक प्रति | 15 रु. |

सदस्यता शुल्क प्रकाशक को भेजें।

अन्तस्तत्त्व

पृष्ठ

- ◆ आचार्य श्री विद्यासागर जी के दोहे आ.पृ. 2
- ◆ सम्पादकीय : कुन्दकुन्द-कहान 2
- ◆ लेख
 - जल : एक अनुचिन्तन : मुनि श्री चन्द्रसागर जी 4
 - सम्यग्दर्शन दुर्लभ है, सम्यग्दृष्टि नहीं : मुनि श्री प्रणम्यसागर जी 6
 - जैन और हिन्दू : डॉ० ज्योतिप्रसाद जी जैन 10
 - भारत के मुस्लिम स्मारकों पर जैन स्थापत्यकला का प्रभाव : डॉ० डब्ल्यू. एच. सिद्दीकी 16
 - बलिहारी गुरु आपकी मारग दियो बताय : डॉ० ज्योति जैन 20
 - उत्तम ब्रह्मचर्य : प्रो० (डॉ०) विमला जैन 21
 - प्रज्ञापुरुष मनोहारी, स्नेह वत्सल व्यक्तित्व प्रो० प्रफुल्ल कुमार मोदी : अरुण जैन 24
 - अहिंसादिवस भारत का राष्ट्रीय पर्व : डॉ० कपूरचन्द्र जैन 26
- ◆ जिज्ञासा-समाधान : पं. रतनलाल बैनाड़ा 28
- ◆ काव्य
 - मुनिश्री क्षमासागर जी की कविताएँ आ.पृ. 3
 - गोम्मटेश गीत : ब्र. शान्तिकुमार जैन 27
- ◆ कथाएँ : मुनि श्री समतासागर जी
 - भगवान् नमिनाथ 19
 - भगवान् नेमिनाथ 30
- ◆ समाचार 31-32

लेखक के विचारों से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

'जिनभाषित' से सम्बन्धित समस्त विवादों के लिये न्यायक्षेत्र भोपाल ही मान्य होगा।

कुन्दकुन्द- कहान

श्री कानजी स्वामी के अनुयायी अपनी संस्थाओं के नाम के पहले कुन्दकुन्द-कहान शब्द जोड़ते हैं। इनके द्वारा आयोजित विभिन्न धार्मिक महोत्सवों की आमंत्रण-पत्रिकाओं में मोटे अक्षरों में आयोजक संस्था के नाम के आगे कुन्दकुन्द-कहान लिखा रहता है। साथ ही पत्रिका में एक ओर आचार्य कुन्दकुन्द और दूसरी ओर कानजी स्वामी का चित्र छपा रहता है। कानजी स्वामी के चित्र के नीचे कहीं सद्गुरु देव और कहीं आध्यात्मिक सत्पुरुष शब्द लिखे रहते हैं। यह बात मेरे मन में बहुत समय से आ रही थी कि कुन्दकुन्द-कहान शब्द के औचित्य पर हमें विचार करना चाहिए।

इस युग के महान् वीतरागी संत कुंदकुंद आचार्य के नाम के साथ कहान नाम की संगति कैसे उचित है? कहान अर्थात् कानजी स्वामी असंयमी थे जिसे निर्विवाद रूप से वे स्वयं स्वीकार करते थे। वे स्वयं को असंयमी कहलाने में गौरव का अनुभव करते थे। जैनशासन में पूज्यता संयम से आती है, ज्ञान से नहीं। कानजी ने चरणानुयोग की व्यवस्था के अनुसार विधिपूर्वक श्रावक के व्रत भी ग्रहण नहीं किए थे अतः वे देशसंयमी भी नहीं थे अपितु असंयमी थे। खैर यह श्री कानजी के व्यक्तिगत जीवन का मामला है अतः हम इस बारे में उनकी आलोचना नहीं करना चाहते। किंतु हम तो केवल यह कहना चाहते हैं कि परमेष्ठी पद में स्थित महान् संयमी आचार्य कुंदकुंद के साथ असंयमी नाम का प्रयोग सर्वथा असंगत है, अनुचित है। आचार्य कुंदकुंद का यह उद्घोष है "असंजदं ण वंदे" असंयमी की वंदना नहीं करना चाहिए। इस घोषणा के आधार पर भी परमेष्ठीस्वरूप परम पूज्य आचार्य कुंदकुंद के नाम के साथ अवंदनीय कानजी स्वामी का नाम जोड़ना अविवेकपूर्ण है, मिथ्यात्व है। परमवंदनीय तीर्थङ्कर भगवान् के चित्र के बराबर में असंयमी व्यक्ति का चित्र देना भी उपयुक्त नहीं है। अंधभक्ति अथवा भक्ति का अतिरेक मिथ्यात्व की कोटि में गिना जाता है।

श्री कानजी स्वामी एक अविरतसम्यग्दृष्टि विद्वान् माने जा सकते हैं और अविरतसम्यग्दृष्टि के योग्य ही व्यवहार के पात्र हैं। उनके लिए सद्गुरु विशेषण का प्रयोग जैनागम के प्रतिकूल है। सद्गुरु अर्थात् सच्चे गुरु की परिभाषा में प.पू. आचार्य समंतभद्र देव ने कहा है-

विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः। ज्ञानध्यानतपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते ॥

धार्मिक क्षेत्र में शिक्षा गुरु का गुरु के रूप में ग्रहण नहीं होता है। धार्मिक क्षेत्र में तो वीतराग दिगम्बर मुनिराज के अतिरिक्त अन्य किसी को भी सद्गुरु नहीं कहा जाना चाहिए। अविरत सम्यग्दृष्टि व्यक्ति को वीतराग दिगम्बर मुनिराज के समान महिमा मंडन करना अज्ञानता अथवा मिथ्यात्व है।

इसी प्रकार श्री कानजी के लिए आध्यात्मिक सत्पुरुष शब्द का प्रयोग भी उचित नहीं है। महान् तार्किक आचार्य समंतभद्र महाराज ने अध्यात्म शब्द का अर्थ आत्मा के निकट होना कहा है। आत्मा के निकट जो रहेंगे वे परपदार्थ (परिग्रह) से दूर रहेंगे। अतः वीतरागी निष्परिग्रही व्यक्ति ही अध्यात्मवृत्त कहा जाता है। अध्यात्म की केवल बातें करनेवाला नहीं, अपितु अंतरङ्ग बहिरङ्ग परिग्रह से मुक्त, इन्द्रिय विषयों से विरक्त व्यक्ति ही आध्यात्मिक व्यक्ति हो सकता है। अतः श्री कानजी को असंयम दशा में होने से आध्यात्मिक सत्पुरुष भी नहीं कहा जा सकता। अध्यात्म ग्रंथों के हिंदी टीकाकार एवं विश्लेषणकर्ता पं० टोडरमल जी, पं० बनारसीदास जी, पं० दौलतराम जी, पं० भागचंद जी, पं० जयचंद जी, आदि अनेक विद्वान् हुए हैं, किंतु उनमें से किसी ने भी अपने लिए संयमी साधुओं के समान आदर की अपेक्षा नहीं की और न अपने नाम के साथ गुरु शब्द का प्रयोग किया।

दिगम्बर जैनधर्म का प्राण संयम अथवा चारित्र्य है। आचार्य कुंदकुंद का उद्घोषवाक्य 'चारित्तं खलु धम्मो' में 'खलु' शब्द का प्रयोग चारित्र्य की मौलिक महत्ता पर प्रकाश डालता है। सोनगढ़पंथ के अनुयायियों ने न केवल अपने साहित्य एवं प्रवचनों में संयम की उपयोगिता को नकारा है, अपितु व्यक्तिगत जीवन में भी संयम की उपेक्षा कर उसकी अनुपयोगिता का समर्थन किया है। धार्मिक क्षेत्र में अपने आदर्श रूप श्री कानजी सहित जिन पाँच व्यक्तियों को इन्होंने स्थापित किया है, वे सब अव्रती अथवा असंयमी हैं। दिगम्बर जैनधर्म की स्थापित परम्परा के अनुसार प्रतिमारूप देशसंयम भी उन्होंने धारण नहीं किया हुआ है। यह स्पष्टतः संयम की परोक्ष उपेक्षा एव असंयम का परोक्ष

समर्थन है, जो दि. जैनधर्म के उन्नायक महान् प्रभावक आचार्य कुंदकुंद द्वारा स्थापित परम्परा के सर्वथा विपरीत है। संयम एवं संयमधारकों के प्रति उपेक्षा बरतने एवं असंयमियों को आराध्य माननेवाले व्यक्ति कम से कम प.पू. आचार्य कुंदकुंद महाराज के उपासक तो नहीं कहे जा सकते। आचार्य कुंदकुंद के नाम पर उनके द्वारा स्थापित परम्पराओं के विपरीत एक नया मनमाना पंथ चलाने का प्रयास किया जा रहा है। यदि यह कहा जाय कि सम्यग्दर्शन रहित शुष्क द्रव्यसंयम का महत्त्व नहीं है, तो उन्हें सम्यग्दर्शन के साथ भावसंयम धारणकर आदर्श उपस्थित करना चाहिए न कि स्वयं संयम से विमुख रहते हुए छलपूर्ण अध्यात्म की बातें करते हुए अपने आपके अध्यात्म पुरुष होने का मिथ्या भ्रम पालते रहना चाहिए। वस्तुतः अध्यात्म का प्रारंभ ही संयम से होता है।

उन्होंने न स्वयं संयम धारण किया और न अपने प्रवचनों में कभी संयम धारण करने की प्रेरणा दी, अपितु संयम एवं संयमधारकों की सदैव आलोचना की। सम्यग्दर्शनरहित संयम के निरर्थक होने की बात तो कभी कही जा सकती है, किंतु सम्यग्दर्शन के होने अथवा न होने का निश्चय हम नहीं कर सकते हैं। कदाचित् अभी सम्यग्दर्शन नहीं भी हो, तो भी धारण किया हुआ संयम सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति में कारण बन सकता है। अतः किसी भी स्थिति में संयम अवश्य धारण करने का समर्थन किया जाना ही तत्त्व की समीचीन प्ररूपणा है। सम्यग्दृष्टि को सात तत्त्वों के समीचीन स्वरूप का श्रद्धान होता है।

सम्यग्दृष्टि संसार के कारण आस्रव, बंध के त्याग एवं मोक्ष के कारण संवर, निर्जरा को आचरण में लाने के लिए सदैव उत्साहित रहता है। अनुकूल परिस्थितियाँ होने पर वह संयम धारण किए बिना नहीं रहता है। श्री कानजी पूर्व में स्थानकवासी साधु थे। घर, परिग्रह, कुटुम्ब सब उन्होंने छोड़ा हुआ था। उनको शारीरिक स्वास्थ्य की अनुकूलता भी थी। ज्ञान एवं वैराग्य की भावना बनी हुई थी। फिर दिगम्बरधर्म स्वीकार करने के बाद, उनके कहे अनुसार सम्यग्दर्शन उत्पन्न हो जाने के बाद सकलसंयम नहीं, तो देशसंयम धारण करने में तो उनको कोई बाधा ही नहीं थी। अपने आराध्य आचार्य कुंदकुंद द्वारा प्ररूपित श्रावक की प्रतिमाओं में से पांचवीं, सातवीं, आठवीं या दसवीं कोई भी प्रतिमा धारण करना उनके लिए सहज संभव था। पांच अणुव्रतों का एवं सात शीलव्रतों का संकल्प लेने में उन्हें कोई बाहरी अड़चन नहीं थी। किंतु उन्होंने देशव्रत भी धारण करने में रुचि नहीं ली। यह संयम के प्रति उनकी अरुचि का ही द्योतक है। यह सुनिश्चित है कि स्वस्थ शरीर एवं अन्य बाह्य अनुकूलताओं के होने पर भी यदि देशसंयम भी धारण नहीं किया जाये, तो उस व्यक्ति के संवर, निर्जरा तत्त्व के श्रद्धानरूप सम्यग्दर्शन के अस्तित्व पर भी प्रश्न चिह्न लगे बिना नहीं रहेगा। सम्यग्दृष्टि अनुकूल परिस्थितियों में संयम के लिए चारित्रमोहनीय के उदय का बहाना नहीं करता, अपितु अपने भीतर संयम धारण करने का उत्साह जाग्रत कर (वैराग्य के बल से) चारित्र मोहनीय का क्षयोपशम कर लेता है।

छहढालाकार ने लिखा है-

सम्यग्ज्ञानी हीय बहुरि दृढचारित लीजे।

एकदेश अरु सकलदेश तसु भेद कही जे॥

आचार्य समंतभद्र के वाक्य-

मोहतिमिरापहरणे, दर्शनलाभादवाप्तसंज्ञानः।

रागद्वेषनिवृत्तै, चरणं प्रतिपद्यते साधुः॥

अतः महान् वीतरागी आचार्य भगवंत कुंदकुंद महाराज के नाम के साथ कहान शब्द जोड़ा जाना तथा तीर्थङ्कर भगवान् के चित्र के साथ श्री कानजी का चित्र प्रकाशित करना अविवेकपूर्ण एवं हमारी धार्मिक परम्परा के प्रतिकूल है।

हमने सुना था कि अंधभक्ति के अतिरेक में श्री कानजी के भावी तीर्थङ्कर होने एवं उनकी मूर्ति स्थापित करने की बात को टोडरमल स्मारक के आगमाभ्यासी विद्वानों ने उचित नहीं माना था। हम आशा करते हैं कि टोडरमल स्मारक से जुड़े हमारे मूल दिगम्बरजैन भाई कुंदकुंद-कहान शब्द का प्रयोग, श्री कानजी का चित्र जिनेन्द्र भगवान् के चित्र के बराबर लगाना एवं श्री कानजी को सद्गुरु अथवा आध्यात्मिक सत्पुरुष शब्द से संबोधन करने की असंगत परम्परा को तोड़कर समीचीन देव-शास्त्र-गुरु के प्रति अपनी प्रगाढ़ श्रद्धा का परिचय देंगे।

मूलचंद लुहाड़िया

जल : एक अनुचिंतन

मुनि श्री चन्द्रसागर जी
(संघस्थ आचार्य श्री विद्यासागर जी)

जल जीवन का आधार बिन्दु है। जल के बिना मनुष्य का काम चल नहीं सकता है। इसके बिना जीवन जीने की कल्पना अधूरी है जो हमें जीवन जीने में सहयोग प्रदान करता है हमें भी उसका ख्याल रखना चाहिए। जल जीव है जीवों की रक्षा करना हमारा अहिंसाधर्म है। इसे भूल जाने से अनर्थ होने में देर नहीं लगेगी। जल का तेल जैसा प्रयोग होने से अहिंसाधर्म जीवित रहेगा। और हम अनर्थदण्ड से बच सकते हैं अन्यथा दण्ड के अधिकारी बनेंगे। जल बहुमूल्य प्राणदाई तत्त्व है उसका रक्षण आवश्यक है। तत्त्वार्थ सूत्र के दूसरे अध्याय में एक सूत्र आता है।

‘पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः’ इसका अर्थ यह हुआ पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक ये पाँच स्थावर हैं। जल, जलकाय, जलकायिक और जलजीव ये जल के चार भेद हैं और सामान्य जल यह जल का एक भेद है। काय का अर्थ शरीर होता है। जलकायिक जीव द्वारा जो शरीर छोड़ दिया जाता है वह जलकाय कहलाता है जिस जल को कायरूप से ग्रहण नहीं किया है तब तक वह जल जीव कहलाता है। ये पाँचों प्रकार के प्राणी स्थावर कहलाते हैं इनके चार प्राण होते हैं। स्पर्शनइन्द्रिय प्राण, कायबलप्राण, उच्छ्वास-निःश्वास प्राण और आयुप्राण। यह जलकायिक जैनदर्शन में एकेन्द्रियतन का धारक कहा है जल के अनेक भेद जानने, देखने को मिलते हैं। जैसे ओस, बर्फ, धुआँ के समान पाला, स्थूलबिन्दुरूप जल, सूक्ष्मबिन्दुरूप जल, चन्द्रकान्तमणि से उत्पन्न शुद्धजल का धनोदार्य वाला जल ये सब जलकायिक जीव हैं जल का वर्ण धवल ही होता है। उसकी द्रव्यलेश्या धवल होती है। जल को जिसने काया बना लिया है ऐसा है जलकायिक, इसे और जानें समझें। विवेकगुण का प्रयोग करते हुए ही जल का प्रयोग करें। जलकायिक की हिंसा के दोष से अपने को बचाना होशियारी कहलाती है। हमें देखना, जानना, समझना है कि हम कहाँ तक जल का रक्षण कर पा रहे हैं। नल को आवश्यकता से अतिरिक्त खुले छोड़ना जलकायिक जीवों की विराधना है। जल का अपव्यय है। आवश्यकता से अधिक खर्च करना फिजूल खर्च है एवं धन की हानि है। जल के आश्रित कई जीवों का हनन, पतन होता है। आज कैसा जमाना आया है कि कहीं पर भी जैनप्रतीक गड़ई-लोटा, छन्ना देखने में नहीं मिलते हैं न रस्सा बाल्टी, न

ही बाल्टी में कड़ा देखने में मिलता है। आज व्रती भी इसमें प्रमाद कर रहे हैं। व्रती स्वाश्रित जीवन जीनेवाला होता है। लोग जल को देवता मानते हैं, पूजा करते हैं, लेकिन छान के पानी को प्रयोग में भी नहीं लाते हैं। कैसी विवेकहीनता है? समझ में नहीं आता इन लोगों का जीवन कैसे सुरक्षित रहेगा? आज जो छान के पानी पियेगा वही रोगों से बच पाएगा।

अब पानी बचाओ आंदोलन नहीं, छान के पानी पिओ आंदोलन चलाना पड़ेगा। जल हमें नदी, तालाब, झरने, कुआँ से प्राप्त होता था यह पुरातन व्यवस्था रही, लेकिन वर्तमान में नल, हैंडपम्प, जेडपम्प से जल प्राप्त होता है। कुआँ का नाम भूल जैसे गए हैं। एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि जिन देशों में कुएँ नहीं हैं वहाँ पर वर्षा का पानी संग्रह करके टाँका बनाया जाता है। उसके अन्दर एक मिट्टी के घड़े में कपड़े में चूना बाँधकर रखा जाता है जिससे जीव उत्पन्न न हों एक वर्ष में जितने पानी की आवश्यकता पड़ती है उतनी क्षमता वाले लोग बनाते हैं। अब प्रश्न उठता है कि नदी, तालाब, झरने, कुएँ, बावड़ी, टाँका आदि के पानी को आसानी से छाना जा सकता है एवं उसकी जिवानी सरलता सहजता से हो जाती है। लेकिन नल, हैंडपम्प, जेडपम्प आदि का पानी छन नहीं पाता न जिवानी हो पाती है, क्योंकि नदी के जल की जिवानी नदी में डालते हैं, तालाब की तालाब में, झरने के जल को झरने में, कुएँ की कुएँ के जल में टाँके की उसी में, तब कहीं वे जीव जीवित रहते हैं जो जिस जल के हैं। वहीं वापस भेजना ही समीचीन धर्म का पालन है। हैंडपम्प, जेडपम्प, नल इनका पानी फिल्टर क्रिया करने पर भी जीवों का घात हो ही जाता है। अब छानने का प्रश्न ही खड़ा नहीं होता है यदि छान लें तो जिवानी डालने के लिए स्थान ही नहीं है, अब नाली में डालें या जमीन में जीव घात को अवश्य प्राप्त होंगे। जिसके हाथ में कड़े वाली बाल्टी है, रस्सा है, छन्ना है, लोटा है, वह जलगालन दृष्टि से अहिंसक है। कड़े वाली बाल्टी अहिंसक है। जैनधर्म में जल को छानकर प्रयोग में लाया जाता है यह महत्वपूर्ण धर्म माना जाता है यह अहिंसा का मूलधर्म है। जगदीशचंद्र बोस नाम के वैज्ञानिक हुए हैं उन्होंने एक बूँद जल में ३६४५० जीव माने हैं जैनआगम में जलकायिक जीवों के बारे में प्रमाण के सम्बन्ध में कहा गया है अंगुल के

असंख्यात भाग प्रमाण जीव पाए जाते हैं। जल में पुराणग्रन्थों, श्रावकाचार संग्रह ग्रन्थों में उल्लेख मिलता है कि जल की एक बूँद में जितने जीव हैं वे कबूतर के बराबर होकर उड़े तो उनके द्वारा जम्बूद्वीप ठसाठस भर जाएगा। पाषाणखण्ड के द्वारा ताड़ित हुआ जल प्रासुक है वादियों का गर्म ताजा जल प्रासुक है। यह सब तत्काल प्रयोग करने योग्य है इसकी इतनी ही मर्यादा है। साधुजन आवश्यकता पड़ने पर शौचक्रिया के लिए तुरन्त ही प्रयोग कर सकते हैं गृहस्थ जन शौचक्रिया एवं स्नान के लिए जल को जब भी कुआँ से निकालें बड़ी सावधानी के साथ ही निकालें, जिससे जलकायिक जीवों की विराधना न हो। आप अपनी बाल्टी को कुआँ में डालते वक्त आँखों के द्वारा परिमार्जन कर लें एवं कुएँ पर लगी हुई घिरी को एवं रस्सी को शर्त यह है आपकी बाल्टी अहिंसक हो अर्थात् कड़े वाली बाल्टी से ही कुआँ से जल निकालें जिससे जिवानी सरलता सहजता से हो सकती है।

अब अपनी बाल्टी को एकदम से जल में न पटकें न ही ऊपर खींचते वक्त पानी गिरे तब कहीं जाकर आप जलकायिक जीवों की विराधना से बच सकते हैं जल छानने के छानने का आगम प्रमाण इसप्रकार है कि ३६ अंगुल लम्बे २४ अंगुल चौड़े वस्त्र को दोहरा करके जल छानना चाहिए। जल छानने का छानना इतना लम्बा चौड़ा हो कि बर्तन से जल छानते वक्त गिरे न एवं इतना मोटा हो जिसके द्वारा सूर्य प्रकाश देखने में न आए तब कहीं तुम्हारा जल छाने जल की कोटि में आएगा। अब ध्यान देना है छानने का रंगीन वस्त्र न हो, न ही पहने हुए वस्त्र हों, न ही मैला वस्त्र हो, न ही छिद्रयुक्त वस्त्र हो, न ही पुराने वस्त्र से जल छानें यदि ऐसा करते हो तो ये सब जलगालन के दोष हैं अहिंसाधर्म के दोष हैं। आगम के अनुसार क्रिया का पालन नहीं करता। ये सब व्रत के अतिचार हैं। छान के जल नहीं पीने से गले में घेंघा रोग हो जाता है। राजस्थान के एक गाँव में घेंघा रोग हो गया। एक ब्राह्मण का परिवार था जो छानकर पानी का प्रयोग करता था। उस परिवार के लोग इस रोग से बच गए। इसी प्रकार नल के पानी में एक बार सागर शहर में पाइप लाइन फूट गई थी। उसमें कुत्ता गिर के मर गया। पानी में मांस के लोथड़े आने लगे एवं बदबू आने लगी ऐसा होता है नल का पानी। 'न' शब्द नरक की ओर संकेत करता है, 'ल' शब्द ले जाने वाला होता है नल अर्थात् नरक की ओर ले जाने वाला। इसी प्रकार हैंडपम्प शब्द कहता है 'हैंड' हाथ 'पम्प' अर्थात् हिंसा का उपकरण। मतलब यह हुआ अपने हाथ से

हिंसा करो ऐसा हैंडपम्प शब्द कहता है, जिससे जलकायिक जीवों की विराधना होती है। हवा के दबाव से वायुकायिक जीव भी घात को प्राप्त हो जाते हैं। यह नाम ही हिंसा का उपदेशक है। अब कुआँ शब्द को जानना समझना है। कुआँ का 'क' शब्द कुक लगाता आवाज लगाता 'अ' शब्द अपने पास आ जाओ। ऐसा कुआँ शब्द कहता है जो अहिंसा का पालन करेगा अपने में आ जाएगा समा जाएगा। गुरुओं की वाणी, कुआँ का पानी दोनों दुर्लभ हैं। टी.वी. की वाणी, नल का पानी सुलभ है। अब और ध्यान देने योग्य बात यह है आपने जो जल छाना है वह छाना हुआ जल आगम की भाषा में दो घड़ी तक छाना माना जाता है। लेकिन गरम किया हुआ नहीं। २४ मिनट की एक घड़ी होती है दो घड़ी मिलकर एक मुहूर्त बनता है। ४८ मिनट का एक मुहूर्त होता है। हरडे आदि से प्रासुक जल, वर्ण, रस, गन्ध जिसका बदल गया वह भी लेने योग्य है इसकी मर्यादा दो प्रहर या छः घण्टे तक की है उबला हुआ जल २४ घण्टे की मर्यादा वाला बनता है उसके बाद बिनाछने हुए जल के समान हो जाता है क्योंकि पूर्ण अवस्था को प्राप्त हो गया है जो दोष रात्रि भोजन करने में लगते हैं वही दोष बिनाछने जल पीने में लगते हैं। छाना हुआ जल दो घड़ी बाद बिनाछने के समान हो जाता है। घी, तेल, दूध, पानी सभी पतले तरल पदार्थों को छानकर ही प्रयोग में लाना चाहिए। अग्नि संस्कार से संस्कारित जल ही सही प्रासुक एवं उचित है। विज्ञान कहता है हाइड्रोजन एवं ऑक्सीजन दो गैस मिलकर जल का जन्म होता है अर्थात् गैस का परिवर्तितरूप जल है। अब आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के द्वारा आँखों देखी बात कही जा रही है। मानो इस घटना ने ही उन्हें बुन्देलखण्ड में स्थित कर दिया। बात इस प्रकार की है जब वे विहार करते हुए राजस्थान से बुन्देलखण्ड की ओर आए ललितपुर जनपद स्थित तालवेहट में एक चबूतरे पर बैठे, उसके सामने एक कुआँ था। एक दस-बारह वर्ष का बालक आता है उसके हाथ में रस्सा, बाल्टी, छाना व परात-कोपर रहता है। जिसे देखकर जैन संस्कृति का ज्ञान होता है। अब वह बालक रस्सी से बाल्टी बाँधता है घड़े के मुख पर दोहरा छाना बाँधता है और घड़े के नीचे परात रखता है ताकि जल का रक्षण हो अहिंसा का पालन हो। इस बात से हमें पानी छानने की सही विधि ज्ञात होती है। अन्त में

पानी पियो छानकर, मित्र करो जानकर।

इस सूत्र का ख्याल रखने से ही जलकायिक का रक्षण हो सकता है।

प्रस्तुति : जयकुमार जलज (हटा, दमोह)

सम्यग्दर्शन दुर्लभ है, सम्यग्दृष्टि नहीं

मुनि श्री प्रणम्यसागर जी

सम्यग्दृष्टि इस पञ्चमकाल में भरतक्षेत्र में तीन, चार ही होते हैं, पाँच, छह नहीं, ऐसा विद्वानों के मुख से सुनने में आता है। पर यह बात क्या सही है? यदि यह बात सत्य है तो फिर यहाँ जो श्रावक, श्राविकायें, श्रमण, आर्यिकाओं के रूप में जो धर्म दिख रहा है ये सभी शंका के पात्र बन जायेंगे और हम अपने मन से अपने को साथ लेकर अपनी समझ से दो-तीन लोगों को और सम्यग्दृष्टि मान लें, यह बात उचित प्रतीत नहीं होती है। दूसरी ओर जब सर्वज्ञ की देशना का और आचार्यों के व्यापक दृष्टिकोण की ओर विचार करते हैं तो लगता है कि ऐसा कदापि सम्भव नहीं है क्योंकि जहाँ तिर्यञ्चों को भी सहज जातरूप देखकर, जिनबिम्ब देखकर सम्यग्दर्शन हो जाता है तो वहाँ मनुष्यों के इस विशाल समुदाय में मात्र तीन, चार सम्यग्दृष्टि हैं, यह अन्याय या कुछ गलत धारणा अज्ञश्य है, यही सब सोचकर आगम के परिप्रेक्ष्य में हम इस विषय को देखने का यहाँ प्रयास करते हैं-

यह एक स्वतंत्र लेख से सिद्ध हो चुका है कि पर्याप्त मिथ्यादृष्टि मनुष्यों की संख्या 22 अङ्क प्रमाण से अधिक है। पर सासादन सम्यग्दृष्टि से संयतासंयत तक द्रव्यप्रमाण से कितने हैं, ऐसी पृच्छना करने पर संख्यात होते हैं, ऐसा कहा है। इससे सिद्ध होता है कि प्रत्येक गुणस्थानगत जीवों की संख्या का एक निश्चित प्रारूप है।

यदि हम यहाँ यह तर्क प्रस्तुत करें कि पूरे ढाई द्वीप में 22 अङ्क प्रमाण मनुष्य हैं और सम्यग्दृष्टि तो कुछ करोड़ हैं, अतः इतने अल्पप्रमाण सम्यग्दृष्टियों का वर्तमान विश्व की 6 अरब मात्र जनसंख्या में अनुपात नगण्य आता है। अतः यहाँ भरतक्षेत्र में सम्यग्दृष्टि बामुशिकल तीन चार निकलते हैं।

यह तर्क ठीक नहीं है क्योंकि हमें मिथ्यादृष्टियों में से सम्यग्दृष्टि नहीं चुनने हैं, अपितु सम्यग्दृष्टि किस क्षेत्र में कितने हो सकते हैं यह समझना है।

इसके लिये सर्वप्रथम हमें प्रत्येक गुणस्थानगत जीवों की संख्या को जानना है। जो इस प्रकार है- सासादन सम्यग्दृष्टि मनुष्य 52 करोड़ हैं। सम्यग्मिथ्यादृष्टि मनुष्य सासादनसम्यग्दृष्टियों के प्रमाण से दूने हैं। असंयत सम्यग्दृष्टि मनुष्य सात सौ करोड़ हैं। संयतासंयतों का प्रमाण तेरह

करोड़ है। यहाँ एक अन्य आचार्य परम्परा से आगत मत का भी उल्लेख किया है, जिसके अनुसार सासादनसम्यग्दृष्टि मनुष्यों का प्रमाण 50 करोड़ तथा सम्यग्मिथ्यादृष्टि मनुष्यों का प्रमाण इससे दूना है, बस इतना ही अन्तर है।

इसके बाद हमें वह अल्पबहुत्व देखना है जिसके अनुसार मनुष्यक्षेत्र से मनुष्यों का विभाजन होता है। वह इस प्रकार है।

ढाईद्वीप के अन्दर आनेवाले अन्तर्द्वीपों के मनुष्य सबसे थोड़े हैं। उत्तरकुरु और देवकुरु के मनुष्य उनसे संख्यातगुणे हैं। हरि और रम्यक क्षेत्रों के मनुष्य उत्तरकुरु और देवकुरु के मनुष्यों से संख्यातगुणे हैं। हैमवत और हैरण्यवत क्षेत्रों के मनुष्य हरि और रम्यक के मनुष्यों से संख्यातगुणे हैं। भरत और ऐरावत क्षेत्रों के मनुष्य हैमवत और हैरण्यवत के मनुष्यों से संख्यातगुणे हैं। विदेहक्षेत्र के मनुष्य भरत और ऐरावत के मनुष्यों से संख्यातगुणे हैं।

मनुष्यों की संख्या के अनुसार ही वहाँ असंयत सम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और संयत की संख्या का बँटवारा यथासम्भव क्षेत्रों में होगा। संयतों के सम्बन्ध में तो ऐसा कहा भी है- 'बहुवमणुस्सेसु जेण संजदा बहुआ चैव तेण।'

चूँकि जिनागम में संख्यात का प्रमाण दो से प्रारम्भ होता है अतः अन्तर्द्वीपों के मनुष्यों में कम से कम यदि अ मान लें तो उत्तरकुरु, देवकुरु में कम से कम सम्यग्दृष्टि मनुष्यों की संख्या

$$= 2 \text{ अ}$$

$$\text{हरि, रम्यक में} \text{-----} = 4 \text{ अ}$$

$$\text{हैमवत, हैरण्यवत में} = 8 \text{ अ}$$

$$\text{भरत, ऐरावत में} = 16 \text{ अ}$$

चूँकि एक भरत और ऐरावतक्षेत्र सम्बन्धी विदेह क्षेत्र 32 होते हैं, इसलिये विदेह में कम से कम सम्यग्दृष्टियाँ मनुष्यों की संख्या = $16\text{अ} \times 32 \times 2 = 1024 \text{ अ}$

यहाँ सर्वत्र संख्यातगुणा का प्रमाण कम से कम 2 का अङ्क लिया है।

$$\therefore \text{कुल सम्यग्दृष्टि मनुष्यों की संख्या} =$$

$$\text{अ} + 2 \text{ अ} + 4 \text{ अ} + 8 \text{ अ} + 16 \text{ अ} + 1024 \text{ अ} = 1055 \text{ अ}$$

$$\therefore 1055 \text{ अ प्रमाण मनुष्यों की संख्या में भरत ऐरावत में सम्यग्द्र० मनुष्यों की संख्या} = 16 \text{ अ}$$

$$\therefore 700 \text{ करोड़ } (7 \times 10^9) \times 16 \text{ अ} / 1055$$

= 1 करोड़ 60 लाख

अर्थात् भरत, ऐरावत सम्बन्धी ढाईद्वीप में दसक्षेत्रों में औसतन सम्यग्दृष्टियों का प्रमाण 1 करोड़ 60 लाख आता है तो एक भरतक्षेत्र सम्बन्धी असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्यों का प्रमाण 16 लाख रह जाता है। यह स्थूल प्रक्रिया जानना।

यह प्रमाण सम्पूर्ण भरतक्षेत्र का है। जिसमें विद्याधर की श्रेणियों में रहनेवाले सम्यग्दृष्टि मनुष्य भी शामिल हैं।

वर्तमान विश्व में इतनी जनसंख्या भले ही दृष्टिगोचर हो पर हमें ध्यान रखना है कि विद्याधर की श्रेणियों में भी इन्हीं 16 लाख मनुष्यों का विभाजन होगा। मोटे तौर से यह सिद्धान्त के आंकड़े हैं, जो यहाँ प्रस्तुत हैं क्योंकि श्रेणी में कितने मनुष्य हैं और यहाँ कितने मनुष्य रहते हैं इस प्रकार के विभाजनवाला कोई अल्पबहुत्व हमें प्राप्त नहीं हुआ है। वर्तमान में जो भारत या विश्व हमें जानने में आ रहा है, वह तो सम्पूर्ण भरतक्षेत्र के कई खण्डों के एक खण्ड का भी बहुत छोटा सा अंश है, यह बात भरतक्षेत्र का विस्तार देखने से ज्ञात हो जाती है। अतः जितना विश्व हमें ज्ञात है उतने में ही हम इस संख्या को न मानें किन्तु भरतक्षेत्र का जो क्षेत्रफल प्रतरांगुलों में आता है उतने प्रमाणक्षेत्र में इतने सम्यग्दृष्टियों को जानना चाहिये।

यदि हम ऐसा नहीं मानते हैं तो भरत, ऐरावतक्षेत्र की अपेक्षा संख्यातगुणे मनुष्य विदेहक्षेत्र में हैं, यह कथन विरोध को प्राप्त हो जायेगा। सात सौ करोड़ सम्यग्दृष्टि मनुष्यों में, विदेह में बहुभाग प्रमाण सम्यग्दृष्टि हैं यह भी इसी गणितीय आकलन से निकल आता है। वह इस प्रकार है- विदेह में सम्यग्द्र० की संख्या=

$$\frac{7 \times 10^9 \times 1024}{1055} \text{ अ} = 6 \text{ अरब } 80 \text{ करोड़}$$

यह पांच विदेहों सम्बन्धी सम्यग्द्र० की संख्या है। अतः 700 करोड़ (7 अरब) सम्यग्दृष्टियों का यह अनुपात ठीक निकल आता है। इसीप्रकार अन्तर्द्वीप, उत्तरकुरु आदि भोगभूमियों में प्रमाण निकाल लेना चाहिए।

यहाँ एक बात फिर से ध्यातव्य है कि यदि भरत क्षेत्र में सम्यग्दृष्टि मनुष्यों की संख्या 3-4 मानेंगे तो उपर्युक्त अल्पबहुत्व के अनुसार हैमवत, हैरण्यवत में संख्यातगुणा कम कैसे करेंगे और यदि इसके ऊपर भी संख्यातगुणा कम करेंगे तो हरि, रम्यक में तो अनुपात नगण्य हो जायेगा। अतः यह अवधारणा सुतरां गलत सिद्ध होती है कि यहाँ सम्यग्दृष्टि मनुष्यों की संख्या 3-4 होती है। यह विवेचन

करणानुयोग के अनुसार है। इसी प्रकार देशसंयत आदि के लिये जो पृथक्-पृथक् संख्या उपलब्ध है उसको भी इसी अल्पबहुत्व से निकालेंगे तो प्रत्येक गुणस्थानवालों की भिन्न-भिन्न संख्या में अनुपात निकल आयेगा। इतना विशेष है कि देशसंयत आदि का पृथक् रूप से अनुपात लाने के लिये भोगभूमि सम्बन्धी अल्पबहुत्व के आकलन को छोड़ देना है।

श्रीमान् तर्करत्न पं. माणिकचन्द्र जी कौन्देय न्यायाचार्य ने 'सम्यग्दर्शन की दुर्लभता' नाम एक लेख लिखा है। उसमें भी पं. जी ने यह तर्क उपस्थित किया है कि 29 अङ्क प्रमाण सम्पूर्ण पर्याप्त मनुष्यों में यदि सभी सम्यग्दृष्टि जीव जो कि 721 करोड़ के लगभग गोम्मटसार में दी गई गाथा 631-632 के अनुसार आते हैं तो एक शंख मनुष्यों में केवल एक मनुष्य सम्यग्दृष्टि गणना में आता है, तब आजकल के तेरह लाख जैनों में तो शायद ही कोई सम्यग्दृष्टि हो?

पं. जी का यह गणित युक्तियुक्त नहीं है। क्योंकि मात्र 13 लाख जैनों में ही हमें सम्यग्दृष्टि नहीं ढूँढना है अपितु पूरे क्षेत्र की संख्या में सम्यग्दृष्टियों का जो अनुपात आता है उसका विभाजन करना है। पूरे भरतखण्ड की संख्या तो एक नहीं कई शंखों में होगी क्योंकि इस भरत क्षेत्र में पाँच तो म्लेच्छखण्ड हैं और दो विजयार्थ की श्रेणियाँ हैं इनमें भी मनुष्य रहते हैं। इन मनुष्यों में जो म्लेच्छखण्ड के मनुष्य हैं वे तो नियम से मिथ्यादृष्टि ही होते हैं अतः हमें विजयार्थ और आर्यखण्ड के मनुष्यों को मिलाकर सम्यग्दृष्टि बाँटने होंगे। इसमें भी वर्तमान वैज्ञानिकों का बताया हुआ जगत्, यूरोप, एशिया, अमेरिका, अफ्रीका ऑस्ट्रेलिया, चीन तथा और भी अन्य छोटे देश अथवा समुद्रीय जलभाग से घिरा हुआ भूमण्डल है इसमें सब मिलाकर कई अरब मनुष्य हैं। पर हम इनमें भी उन 721 करोड़ सम्यग्दृष्टियों का बाँटवारा नहीं कर सकते हैं क्योंकि यह सब अयोग्य क्षेत्र है। अतः हमें सम्यग्दृष्टियों की संख्या एक सीमित निश्चित भू-भाग पर ही देखनी होगी। सम्पूर्ण मनुष्यों की संख्या में सम्यग्दृष्टियों को क्यों बाँटें जबकि हमें मालूम है कि इन म्लेच्छ आदि खण्डों में सम्यग्दृष्टि होते नहीं, और हो नहीं सकते। पूर्वाचार्यों ने इस प्रकार न तो विभाजन किया है, और न इस प्रकार विभाजन करने के लिये कहा है। गुणत्वा को धारण करनेवाली वस्तु किसी निश्चित क्षेत्र में ही पर्याप्त मात्रा में मिलती है। उदाहरण के लिये यदि भारत की करोड़ हेक्टेयर भूमि के किसी एक निश्चित भू-भाग में होनेवाले किसी खनिज पदार्थ को

अनुपात से यदि भारत की सम्पूर्ण क्षेत्र भूमि में बाँटेंगे तो परिणाम तो नगण्य आयेगा जबकि वह वस्तु विशिष्टस्थान पर पर्याप्तमात्रा में प्राप्त होती है। बहुत अधिक क्षेत्र या बहुत अधिक संख्या में किसी विशिष्ट वस्तु का विभाजन कर अनुपात निकालना प्रत्यक्ष और अनुमान से बाधित है।

यदि हम संख्या के माध्यम से सम्यग्दृष्टियों का गणित निकालेंगे तो इसका अर्थ यह हुआ कि सम्यग्दर्शन मनुष्यों की संख्या पर आश्रित हो गया। अर्थात् जब एक शंख कम से कम मनुष्यों की संख्या जिस किसी काल में होगी तब कहीं एक सम्यग्दृष्टि यहाँ होगा ऐसा सिद्ध होगा, यह तो बहुत बड़ी पराश्रितता और सिद्धान्त विरुद्ध बात होगी। भगवान् महावीर और उनके सैकड़ों वर्षों बाद भी इतनी संख्या इस भू-भाग पर रही होगी ऐसा इतिहास से भी सिद्ध नहीं होता ऐसी स्थिति में हमारा यह विभाजन का गणित पूर्णतया बाधित होता है। जब करोड़ों की संख्या में होनेवाले सम्यग्दृष्टि विभाजित होकर एक की संख्या में शंखप्रमाण जनसंख्या में आते हैं तो देशसंयत मनुष्य तो और भी कम हैं तथा संयत तो लाखों में ही हैं ऐसी स्थिति में हमें संयतों (मुनियों) की संख्या का अभाव ही प्राप्त होगा। यह फिर उसी अनुपात से जनसंख्या बढ़ानी होगी। जनसंख्या जब बढ़ेगी तब बढ़ेगी किन्तु वर्तमान में तो धर्म का अभाव ही हो जायेगा। सम्यग्दर्शन ही धर्म कहलाता है, जब सम्यग्दृष्टि ही नहीं तो इस भरतक्षेत्र में कहाँ मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका होंगे। और जब ये ही नहीं होंगे तो धर्म का आधार क्या? अतः आगमप्रमाण से इसप्रकार की अवधारणा का कोई अस्तित्व ही सिद्ध नहीं होता। अभी इतना निकृष्ट काल नहीं आया जितना कि आगे आनेवाला है, जब पञ्चमकाल के अन्त में एक श्राविका, श्रावक, एक मुनि, आर्यिका का सद्भाव बताया है तो अभी हम उसका पूर्णता अभाव देखें यह बात सर्वथा गलत है।

अतः लेख के प्रारम्भ में जो आगम में दिये गये अल्पबहुत्व से सम्यग्दृष्टियों की संख्या का विभाजन आगम प्रमाण से जानकर तथा पं. जी का गणितीय विभाजन भी प्रत्यक्ष और आगमप्रमाण से बाधित जानकर यहाँ भ्रान्ति के कुछ स्रोतों का और निराकरण करते हैं-

सर्वप्रथम हमारे सामने उपस्थित है श्रीकार्तिकेयानुप्रेक्षा ग्रन्थ की गाथा-

विरला णिसुणहि तच्चं विरला जाणांति तच्चदोतच्चं ।

विरला भावहि तच्चं विरलाणं धारणा होदि ॥

यह गाथा लोकानुप्रेक्षा के अन्तर्गत आयी है। इस

गाथा का भाव मात्र इस सम्पूर्ण लोक में तत्त्वों का सुनना, जानना, भावना करना और स्थायी धारणा बनानेवाले मनुष्यों की विरलता को अपेक्षाकृत सूचित करना ही था, इससे अधिक कुछ नहीं। यहाँ न तो आगे या पीछे कहीं भी सम्यग्दृष्टि का प्रकरण है और न सम्यग्दृष्टि की संख्या को बताने का भाव ही है। अब दृष्टि डालते हैं इस गाथा की टीका के ऊपर- जिसका हिन्दी अर्थ है-

तत्त्ववेत्ता सावधान चित्तवाले पुरुष बहुत ही स्वल्प हैं जो जीवादि तत्त्वों का स्वरूप बहुलता से सुनते हैं। पुनः उससे भी स्वल्प वे जन हैं जिनका अन्तःकरण सम्यग्ज्ञानमय है पर कर्मक्षय की बुद्धि से जीवादि पदार्थ का स्वरूप वे जानते हैं। उनसे भी अल्प वे सम्यग्दृष्टि हैं जो जीवादि स्वरूप की भावना करते हैं और फिर एक कारिका को उद्धृत करते हुए उनकी बात करते हैं कि जिनकी जीवादितत्त्व में निश्चय धारणा होती है, जो आत्मिक प्रमोद से सुखी और खुली अन्तर्दृष्टिवाले होते हैं ऐसे जीव तीन चार होते हैं, पांच-छह तो दुर्लभ हैं।

पाठक यदि ध्यान से इस प्रसङ्ग को पढ़ें तो समझेंगे कि गाथा में जो चार प्रकार के जीव बताये गये हैं, वे सभी सम्यग्दृष्टि हैं। टीका की स्पष्ट विवेचना से यह ज्ञात होता है कि 'तत्त्ववेत्ता' प्रथम विरल जीवों के लिये विशेषण दिया और सावधान सन्तपुरुष कहा है, उससे स्पष्ट हो जाता है कि यहाँ साधु-संयत पुरुषों की विवक्षा है, न कि असंयत सम्यग्दृष्टि मात्र की। तत्त्व को सुनने के लिये 'अतिशय' शब्द भी दिया है जिससे यह संकेत किया है कि ऐसे जीव को मात्र तत्त्व सुनने की खूब इच्छा रहती है। मिथ्यादृष्टि को यह रुचि नहीं होती कि वह तत्त्व को खूब सुने। इसके बाद दूसरे विरल पुरुषों में जाननेवालों की गणना है और तीसरे क्रम के विरल पुरुषों में तो स्पष्टरूप से उन्हें सम्यग्दृष्टि कह दिया है जो पांच-छह हैं। ये जीव तत्त्व की भावना करनेवाले हैं। अन्त में सर्वाधिक विरल उन जीवों को कहा है जो मात्र अपने शुद्धस्वरूप के ध्यान में लीन होते हैं। जिनकी धारणा ही उस तत्त्व की बन जाती है जिनकी वृत्ति इसप्रकार हो जाती है कि वे-

'ब्रुवन्नपि हि न ब्रूते गच्छन्नपि न गच्छति ।

स्थिरीकृतात्म तत्त्वस्तु पश्यन्नपि न पश्यति ॥'

अर्थात् जो बोलते हुए भी नहीं बोलते हैं, चलते हुए भी नहीं चलते हैं और देखते हुए भी नहीं देखते हैं क्योंकि वे आत्मतत्त्व में स्थिर हैं। अब हमें यहाँ यह सोचना है कि क्या यह विवेचन असंयतसम्यग्दृष्टियों का है? क्या

यहाँ सम्यग्दृष्टियों की संख्या बताने का प्रयोजन है? क्या यहाँ सैद्धान्तिक आँकड़े बताने का प्रयोजन है तीन, चार या पाँच, छह यह कथन क्या किसी संख्या का निर्धारण कर रहा है? क्या यहाँ मात्र आर्यक्षेत्र के लिये कहा जा रहा है? क्या यहाँ पञ्चमकाल के मनुष्यों का वर्णन किया जा रहा है? इत्यादि अनेक प्रश्न यहाँ सहज ही उपस्थित हो जाते हैं और उनका उत्तर एकमात्र 'नहीं' में आता है।

उपर्युक्त गाथा योगीन्दुदेव के योगसार-प्राभृत में छाया रूप है। तद्यथा-

'विरला जाणहि तत्त बुह विरला णिसुणहि तत्तु।

विरला ज्ञायहिं तत्तु जिय विरला धारहि तत्तु॥'¹⁹

अर्थात् विरले लोग ही तत्त्वों को समझते हैं, विरले ही तत्त्वों को सुनते हैं, विरले ही तत्त्वों का ध्यान करते हैं और विरले ही जीव तत्त्व को धारण करते हैं यहाँ मूल दोहे में 'बुह' शब्द आया है जो पण्डित/सम्यग्ज्ञानी/मुनि के अर्थ में है दोहे के पूर्वार्ध में यहाँ जाननेवालों को पहले कहा है, बाद में सुननेवालों को बस इतना ही प्राकृत गाथा से अन्तर है। दोहे में आया बुध शब्द सम्बोधनार्थ हुआ है। यथा- 'जो शम और सुख में लीन हुआ पण्डित/बुध बारबार आत्मा को जानता है। वह निश्चय ही कर्मों का क्षयकर शीघ्र ही निर्वाण पाता है।'²⁰ अतः स्पष्ट है कि बुध शब्द यहाँ यति/संयत को सम्बोधन करने के लिये है। अतः कार्तिकेयानुप्रेक्षा की टीका और गाथा का भाव मुनियों में भी आत्मध्यानी मुनियों की विरलता बतलाने का है न कि अविरतसम्यग्दृष्टि मनुष्यों की।

दूसरा उद्धरण 'ज्ञानार्णव' ग्रन्थ का है। मुनियों के साम्यभाव की प्रशंसा करते हुए और उस समता का फल दिखलाते हुए कहते हैं- जिन्होंने अपनी दुर्बुद्धि के बल से समस्त वस्तु के समूह का लोप कर दिया है और जिनका चित्त विज्ञान से शून्य है ऐसे पुरुष तो घर-घर में विद्यमान हैं और अपने-अपने प्रयोजनों को साधने में तत्पर हैं। किन्तु जो समभावजनित आनंदामृतसमुद्र के जलकणों के समूह

से संसाररूप अग्नि को बुझाकर मुक्तिरूपी स्त्री के बाद चन्द्रमा को देखने में तत्पर हैं ऐसे महापुरुष यदि हैं तो वे दो या तीन ही हैं।

अतः यहाँ भी वीतरागी/शुद्धोपयोगी मुनियों की विरलता बतायी गयी है। ये कोई सैद्धान्तिक आँकड़े नहीं हैं जिन्हें शत प्रतिशत सत्य एवं अकाट्य माना जाय। भावना ग्रन्थों में और साहित्य की धारा में इस प्रकार की अलंकारिकछता जैनेतर ग्रन्थों में देखी जाती है।

इस समूचे विवेचन से सुतरां यह फलित होता है कि पञ्चमकाल के इस निकृष्ट कालावधि में भी सम्यग्दृष्टि जीव रहते हैं उनकी संख्या मिथ्यादृष्टियों की अपेक्षा अत्यन्त अल्प है, पर एक, दो या तीन, चार संख्या कहकर हम लोगों को भ्रम में न डालें और जो धार्मिकजन यथाशक्ति मोक्षमार्ग पर चल रहे हैं उनके लिये संदेहदृष्टि रखकर अपना आत्म अहित न करें। सम्यग्दर्शन दुर्लभ है यह सत्य है किन्तु सम्यग्दृष्टि जीव मिलना भी दुर्लभ/असंभव है ऐसा नहीं है। यदि ऐसा हुआ या माना तो धर्मव्युच्छित्ति का प्रसङ्ग आ जायेगा। अतः शास्त्रविहित कर्तव्यों का पालनकर, उसकी बार-बार भावना कर श्रद्धान दृढ़ बनायें और दूसरों को भी ऐसा ही करने का उपदेश दें यही स्वपरहिताया वृत्ति होगी। इत्यलम्॥

सन्दर्भ

1. श्री षट्खण्डागम सूत्र 43 श्री धवला पु.3
2. श्री धवला पु. 3 पृ. 251
3. श्री धवला पु. 3 पृ. 99
4. वही
5. कार्तिकेय अनुप्रेक्षा गाथा 279
6. इष्टोपदेश
7. योगसार दोहा 66
8. योगसार दोहा 93
9. ज्ञानार्णव सर्ग 24/33

अजरामरवत्प्राज्ञो विद्यामर्थं च साधयेत्।

गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्॥

मनुष्य अपने को अजर-अमर समझकर विद्या और धन का संचय करे, किन्तु धर्म का संचय यह समझकर करे मानो मृत्यु चोटी पकड़े हुए है।

जैन और हिन्दू

बहुश्रुत विद्वान्
डॉ० ज्योतिप्रसाद जी जैन

प्रसिद्ध ऐतिहासज्ञ और बहुश्रुत विद्वान् डॉ० ज्योतिप्रसाद जी ने हमारे विशेष आग्रह पर 'जैन और हिन्दू' सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण निबंध प्रस्तुत किया है। जिसमें आपने उन प्रचलित सभी मान्यताओं का खण्डन किया है। जिनके आधार पर कतिपय कानिद जैनों को हिन्दू समझते हैं। राष्ट्रनायक स्व० पं० जवाहरलाल जी नेहरू ने अपने प्रसिद्ध-ग्रंथ 'डिस्कवरी आफ इण्डिया' में लिखा है कि जैनधर्म और बौद्धधर्म निश्चय से न हिन्दूधर्म है और न वैदिकधर्म ही, तथापि उन दोनों का जन्म भारतवर्ष में हुआ और वे भारतीय जीवन संस्कृति एवं दार्शनिक चिन्तन के अविभाज्य अङ्ग रहे हैं। जैनधर्म तथा बौद्धधर्म भारतीय विचारधारा एवं सभ्यता की शत प्रतिशत उपज है तथापि उनमें से कोई हिन्दू नहीं है।

विद्वान् लेखक ने अनेक प्रमाणों के आधार पर इसी बात को सिद्ध किया है जो पठनीय एवं तर्क सम्मत और यथार्थ है।

सम्पादक : श्री तनसुखराय जैन स्मृतिग्रन्थ

क्या जैन हिन्दू हैं? अथवा, क्या जैनी हिन्दू नहीं हैं?— यह एक ही प्रश्न के दो पहलू हैं, और यह प्रश्न आधुनिक युग के प्रारंभ से ही रह-रह कर उठता रहा है सन् 1950-55 के बीच तो सन् 51 की भारतीय जनगणना, तदनन्तर हरिजनमंदिरप्रवेश बिल एवं आन्दोलन तथा भारतीय भिखरी अधिनियम आदि को लेकर इस प्रश्न ने पर्याप्त तीव्र वाद-विवाद का रूप ले लिया था।

स्वयं जैनों में इस विषय में दो पक्ष रहे हैं— एक तो स्वयं को हिन्दूपरम्परा से पृथक् एवं स्वतंत्र घोषित करता रहा है और दूसरा अपने आपको हिन्दूसमाज का अङ्ग मानने में कोई आपत्ति नहीं अनुभव करता। इस प्रकार तथाकथित हिन्दुओं में भी दो पक्ष रहे हैं जिनमें से एक तो जैनों को अपने से पृथक् एक स्वतन्त्र सम्प्रदाय मानता रहा है और दूसरा उन्हें हिन्दूसमाज का ही एक अङ्ग घोषित करने में तत्पर दिखाई दिया है। वास्तव में यह प्रश्न उतना तात्त्विक नहीं जितना कि वह ऐतिहासिक है।

जैन या जैनी 'जिन' के उपासक या अनुयायी हैं। जिन, जिनेन्द्र, जिनेश या जिनेश्वर उन अर्हत् केवलियों को कहते हैं जिन्होंने श्रमपूर्वक तपश्चरणादि रूप आत्मशोधन की प्रक्रियाओं द्वारा मनुष्य जन्म में हो परमात्मपद प्राप्त कर लिया है। उनमें से जो संसार के समस्त प्राणियों के हितसुख के लिए धर्मतीर्थ की स्थापना करते हैं वह तीर्थङ्कर कहलाते हैं। इन तीर्थङ्करों द्वारा आचरित, प्रतिपादित एवं प्रचारित धर्म ही जैनधर्म है और उसके अनुयायी जैन या जैनी कहलाते हैं। विभिन्न समयों एवं प्रदेशों में वे भ्रमण, ब्रात्य, निर्ग्रन्थ, श्रावक, सराक, सदावगी या सराओगी, सेवरगान, समानी,

सेवडे, भावडे, भव्य अनेकान्ती, स्याद्वादी आदि विभिन्न नामों से भी प्रसिद्ध रहे हैं।

आधुनिक युग में लगभग सौ-सवासौ वर्ष पर्यन्त गंभीर अध्ययन, शोधखोज, अनुसंधान, अन्वेषण और गवेषण के परिणामस्वरूप प्राच्यविदों, पुरातत्त्वज्ञों, इतिहासज्ञों एवं इतिहासकारों तथा भारतीयधर्म, दर्शन, साहित्य और कला के विशेषज्ञों ने यह तथ्य मान्य कर लिया है कि जैनधर्म भारतवर्ष का एक शुद्ध भारतीय, सर्वथा स्वतन्त्र एवं अत्यन्त प्राचीनधर्म है उसकी परम्परा कदाचित् वैदिक अथवा ब्राह्मणीय परम्परा से भी अधिक प्राचीन है। उसका अपना स्वतन्त्र तत्त्वज्ञान है स्वतन्त्र दर्शन है, स्वतन्त्र अनुश्रुतिएँ एवं परम्पराएँ हैं, विशिष्ट आचार-विचार एवं उपासना पद्धति है, जीवन और उसके लक्ष्य सम्बंधी विशिष्ट दृष्टिकोण है, अपने स्वतन्त्र देवालय एवं तीर्थस्थल हैं, विशिष्ट पर्व त्योहार हैं, विविध विषयक एवं विभिन्न भाषा विषयक विपुल साहित्य है तथा उच्चकोटि की विविध एवं प्रचुर कलाकृतियाँ हैं। इसप्रकार एक सुस्पष्ट एवं सुसमृद्ध संस्कृत से समन्वित यह जैनधर्म भारतवर्ष की श्रमण नामक प्रायः सर्वप्राचीन सांस्कृतिक एवं धार्मिकपरम्परा का प्रागैतिहासिक काल से ही सजीव प्रतिनिधित्व करता आया है।

इस सम्बन्ध में कतिपय विशिष्ट विद्वानों के मन्तव्य द्रष्टव्य हैं (देखिए हमारी पुस्तक- जैनिज्म दी ओल्डेस्ट् लिविंग रिलीजन) यथा ... प्रो० जयचन्द विद्यालंकार- 'जैनों के इस विश्वास को कि उनका धर्म अत्यन्त प्राचीन है और महावीर के पूर्व अन्य 23 तीर्थङ्कर हो चुके थे भ्रमपूर्ण और निराधार कहना तथा उन समस्त पूर्ववर्ती तीर्थङ्करों को

काल्पनिक एवं अनैतिहासिक मान लेना न तो न्यायसंगत ही है और न उचित ही। भारतवर्ष का प्रारंभिक इतिहास उतना ही जैन है जितना कि वह अपने आपको वेदों का अनुयायी कहनेवालों का है।' (वही पृ. 16) इसी विद्वान् तथा डॉ० काशीप्रसाद जायसवाल के अनुसार अथर्ववेद आदि में उल्लिखित ब्राह्मण अथवा अब्राह्मणीय क्षत्रिय जैनधर्म के अनुयायी थे। (वही पृ.17) डॉ० राधाकृष्णन के अनुसार जैनधर्म वर्धमान अथवा पार्श्वनाथ के भी बहुत पूर्व प्रचलित था (वही पृ. 20), तथा यह कि यजुर्वेद में ऋषभ, अजितनाथ और अरिष्टनेमि, इन तीर्थङ्करों का नामोल्लेख है, ऋग्वेदादि के यह उल्लेख तमाम, ऋषभादि, विशिष्ट जैन तीर्थङ्करों के ही हैं और भागवतपुराण से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि ऋषभदेव ही जैनधर्म के प्रवर्तक थे (वही, पृ. 41-42)।

प्रो० पार्जिटर, रहोड, एडकिन्स, ओल्डहम आदि विद्वानों का मत है कि वैदिक एवं हिन्दू पौराणिक साहित्य के असुर, राक्षस आदि जैन ही थे। और डॉ० हरिसत्य भट्टाचार्य का कहना है कि जैन और ब्राह्मणीय, दोनों परम्पराओं के साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन से आधुनिकयुग के कतिपय विद्वानों का यह साग्रह मत है कि वैदिकपरम्परा के अनुयायियों ने राक्षसों की जो अत्यधिक निन्दा, भर्त्सना की है उसका कारण यही है कि वे जैन थे, यह कि बाल्मीकि रामायण में राक्षसजाति का जैसा वर्णन है उससे स्पष्ट है कि वे जैनों के अतिरिक्त अन्य कोई हो ही नहीं सकते और रामायण के रचयिता ने उनका जो वीभत्स चित्रण किया है वह धार्मिक विद्वेष से प्रेरित होकर ही किया है (वही, पृ. 26, 27, 30) अन्य अनेक प्रख्यात विद्वानों ने जैनधर्म और उसके अनुयायियों की स्वतंत्रसत्ता वैदिकपरम्परा के ब्राह्मण (या हिन्दू) धर्म और उसके अनुयायियों के उदय से पूर्व से चली आई निश्चित की है, कुछ ने सिन्धुघाटी की प्रागैतिहासिक सभ्यता में भी जैनधर्म के उससमय प्रचलित रहने के चिह्न लक्ष्य किये हैं। (वही पृ. 39 आदि)। उसके ब्राह्मण (हिन्दू) धर्म की कोई शाखा या उपसम्प्रदाय होने का प्रायः सभी विद्वानों ने सबल प्रतिवाद किया है।

अब 'हिन्दू' शब्द को लें। प्रथम तो यह शब्द भारतीय है ही नहीं, विदेशी है और अपेक्षाकृत पर्याप्त अर्वाचीन है। इतिहासकाल में सर्वप्रथम जो विदेशीजाति भारतवर्ष और भारतीयों के स्पष्ट सम्पर्क में आयी वह फारसदेश के निवासी ईरानी थे। छठी शताब्दी ईसापूर्व में ईरान के शाहदारा ने भारतवर्ष के पश्चिमोत्तर सीमान्त पर आक्रमण किया था और उसके कुछ भाग को उसने अपने राज्य में मिला लिया था तथा उसे उसकी एक क्षेत्रीय (सूबा) बना दिया था। उस

काल में वर्तमान अफगानिस्तान भी भारतवर्ष का ही अङ्ग समझा जाता था। ईरानी लोग सिन्धुनद के उस पार के प्रदेश को भारत ही समझते थे, इस पार का समस्त प्रदेश उनके लिये चिरकाल तक अज्ञात बना रहा। ईरानी भाषा में 'स' को 'ह' हो जाता है, अतएव वह लोग सिन्धुनदी को दरियाए हिन्द या हिन्दवी कहते थे। उनका यह सूबा भी हिन्द की सत्रयी (क्षेत्रीय) कहलाता था और उनकी सेना का भी एक अङ्ग हिन्दी सेना थी।

ईरानियों के द्वार से ही यूनानियों को सर्वप्रथम इस देश का ज्ञान हुआ और ईसा पूर्व 326 में सिकन्दर महान् के आक्रमण द्वारा उसके साथ उनका प्रत्यक्ष सम्पर्क हुआ। यूनानी लोग 'ह' का उच्चारण नहीं कर पाते थे। उन्होंने ईरानियों के 'हिन्द' को 'इन्ड' कर दिया। वह हिन्द (सिन्धु) नदी को 'इन्डस' कहने लगे और उसके तटवर्ती उस हिन्द (सिन्धु) प्रदेश या देश को इन्डि या इन्डिका कहने लगे। जब सिन्धुनदी के इस पार के प्रदेश से उनका परिचय हुआ तो पूरे भारतदेश को भी वे उसी नाम से पुकारने लगे। रोम देश के निवासियों ने भी यूनानियों का ही अनुकरण किया और कालान्तर में यूरोप की अन्य सब भाषाओं में भी भारतवर्ष का सूचन इन्ड, इन्डि, इन्डे, इन्डियेन, इन्डीस, इन्डिया आदि विभिन्न रूपों में हुआ जो सब एक ही मूल यूनानी शब्द की पर्यायें हैं। इसप्रकार अंग्रेजी में भारतवर्ष के लिए इन्डिया और भारतीय विशेषण के लिए इन्डियन तथा इन्डो शब्द प्रचलित हुए।

चीनियों को भारतवर्ष की स्पष्ट जानकारी सर्वप्रथम दूसरी शताब्दी ईस्वी पूर्व में उत्तरवर्ती हानवंश के सम्राट वूति के समय में हुई बताई जाती है और उसकाल के एक चीनी ग्रन्थ में उसका सर्वप्रथम उल्लेख हुआ बताया जाता है। उसमें सिन्धुनद के लिए 'शित्तु' शब्द प्रयुक्त हुआ है और यही के निवासियों के लिए 'युआन्तु' अथवा 'यित्तु', कालान्तर में 'ध्यान्तु' शब्द का प्रयोग भी मिलता है।

सातवीं शताब्दी ई० से मुसलमान इस देश में आने प्रारम्भ हुए और वे ईरानियों के आक्रमण से इसे 'हिन्द' और इसके निवासियों को अहले हिन्द कहने लगे। दसवीं शताब्दी के अन्त में अफगानिस्तान को केन्द्र बनाकर तुर्क मुसलमानों का साम्राज्य स्थापित हुआ और वे गजनी के सुल्तानों के रूप में भारतवर्ष पर लुटेरे आक्रमण करने लगे। तुर्कों का मूलस्थान चीन की पश्चिमी सीमा पर था और भारत एवं चीन के बीच यातायात प्रायः उन्हीं के देश में होकर होता था। यह तुर्क लोग मुसलमान बनने के पूर्व चिरकाल तक बौद्धादि भारतीयधर्मों के अनुयायी रहे थे अतएव दसवीं-ग्यारहवीं

शताब्दी में जब वे भारतवर्ष के सम्पर्क में आये तो चीनी, अरबी एवं फारसी मिश्र प्रभाव के कारण वे इस देश को हिन्दुस्तान, यहाँ के निवासियों को हिन्दू और यहाँ की भाषा को हिन्दवी कहने लगे। मध्यकाल के लगभग 700 वर्ष के मुसलमानी शासन में ये शब्द प्रायः व्यापकरूप से प्रचलित हो गये।

यह मुसलमान लोग समस्त मुसलमानेतर भारतीयों को, जो कि यहाँ के प्राचीन निवासी थे सामान्यतः स्थूल रूप से हिन्दू या पहले हनूद और उनके धर्म को हिन्दू मजहब कहते रहे हैं, वैसे उनके कोष में काफिर, जिम्मी, बुतपरस्त, दोजखी आदि अन्य अनेक सुशब्द भी थे जिन्हें वे भारतीयों के लिए बहुधा प्रयुक्त करते थे, हिन्दू शब्द का एक अर्थ वे 'चोर' भी करते थे। ये कथित हिन्दू एक ही धर्म के अनुयायी हैं या एकाधिक परस्पर में स्वतन्त्र धार्मिकपरम्पराओं के अनुयायी हैं इसमें औसत मुसलमान की कोई दिलचस्पी नहीं थी, उसके लिए तो वे सब समान रूप से काफिर, बुतपरस्त, जाहिल और बेईमान थे। स्वयं भारतीयों को भी उन्हें यह तथ्य जानने की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि उनके लिए प्रायः सभी मुसलमान विधर्मी थे। किन्तु मुसलमानों में जो उदार विद्वान् और जिज्ञासु थे यदि उन्होंने भारतीय समाज का कुछ गहरा अध्ययन किया था प्रशासकीय संयोगों से किन्हीं ऐसे तथ्यों के सम्पर्क में आए तो उन्होंने सहज ही यह भी लक्ष्य कर लिया कि इन कथित हिन्दुओं में एक-दूसरे से स्वतन्त्र कई धार्मिकपरम्पराएँ हैं और अनुयायियों की पृथक्-पृथक् सुसंगठित समाजें हैं। ऐसे विद्वानों ने या दर्शकों ने कथित हिन्दू समूह के बीच में जैनों की स्पष्ट सत्ता को बहुधा पहचान लिया। मुसलमान लेखकों के समानी, तायसी, सयूरगान, सराओगान, सेवड़े आदि जिन्हें उन्होंने ब्राह्मणधर्म के अनुयायियों से पृथक् सूचित किया है जैन ही थे। अबुलफजल ने तो आईने अकबरी में जैनधर्म और उसके अनुयायियों का हिन्दूधर्म एवं उसके अनुयायियों से सर्वथा स्वतन्त्र एक प्राचीन परम्परा के रूप में विस्तृत वर्णन किया है।

जब अंग्रेज भारत में आये तो उन्होंने भी प्रारंभिक मुसलमानों की भांति स्वभावतः तथा उन्हीं का अनुकरण करते हुए, समस्त मुसलमानेतर भारतीयों (इण्डियन्स) को हिन्दू और उनके धर्म को हिन्दूइज्म समझा और कहा। किन्तु १८वीं शती के अन्तिमपाद में ही उन्होंने भारतीयसंस्कृति का गम्भीर अध्ययन एवं अन्वेषण भी प्रारम्भ कर दिया था। और शीघ्र ही उन्हें यह स्पष्ट हो गया कि हिन्दुओं और उनके धर्म से स्वतन्त्र भी कुछ धर्म और उनके अनुयायी इस देश में हैं,

और वे भी प्रायः उतने ही प्राचीन एवं महत्त्वपूर्ण हैं भले ही वर्तमान में वे अत्यधिक अल्पसंख्यक हों। 19 वीं शती के आरम्भ में ही कोलबुक, डुबाय, टाड, फर्लांग, मेकेन्जी, विल्सन आदि प्राच्यविदों ने इस तथ्य को भली प्रकार समझ लिया था और प्रकाशित कर दिया था। फिर तो जैसे-जैसे अध्ययन बढ़ता चला गया यह बात स्पष्ट से स्पष्टतर होती चली गई। इन प्रारंभिक प्राच्यविदों ने कई प्रसङ्गों में ब्राह्मणादि कथित हिन्दुओं के तीव्र जैनविद्वेष को भी लक्षित किया। 19वीं शती के उत्तरार्ध में उत्तर-भारत के अनेक नगरों में जैनों के रथयात्रा आदि धर्मोत्सवों का जो तीव्र विरोध कथित हिन्दुओं द्वारा हुआ वह भी सर्वविदित है। गतदशकों में यह गाँव, जबलपुर आदि में जैनों पर जो साम्प्रदायिक अत्याचार हुए और वर्तमान में बिजोलिया में जो उत्पात चल रहे हैं उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। हिन्दू महासभा में जैनों के स्वत्वों की सुरक्षा की व्यवस्था होती तो जैनमहासभा की स्थापना की कदाचित् आवश्यकता न होती। आर्यसमाज संस्थापक स्वामी दयानन्द ने जैनधर्म और जैनों का उन्हें हिन्दूविरोधी कहकर खंडन किया। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ या जनसंघ में भी वही संकीर्ण हिन्दू साम्प्रदायिक मनोवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। स्वामी करपात्री जो आदि वर्तमान कालीन हिन्दूधर्म नेता भी हिन्दूधर्म का अर्थ वैदिकधर्म अथवा उससे निसृत शैव-वैष्णवादि सम्प्रदाय ही करते हैं। अंग्रेजी कोषग्रन्थों में भी हिन्दूइज्म (हिन्दूधर्म) का अर्थ ब्रह्मनिज्म (ब्राह्मणधर्म) ही किया गया है।

इस प्रकार मूल वैदिकधर्म तथा वैदिकपरम्परा में ही समय-समय पर उत्पन्न होते रहनेवाले अनगितन अवान्तर भेद-प्रभेद, यथा याज्ञिक कर्मकाण्ड और औपनिषदिक अध्यात्मवाद, श्रौत और स्मार्त, सांख्य-योग-वैशेषिक-न्याय-मीमांसा-वेदान्त आदि तथाकथित आस्तिकदर्शन और बार्हस्पत्य-लोकायत वा चार्वाक जैसे नास्तिकदर्शन, भागवत एवं पाशुपत जैसे प्रारम्भिक पौराणिक सम्प्रदाय और शैव-शाक्त-वैष्णवादि उत्तरकालीन पौराणिक सम्प्रदाय, इन सम्प्रदायों के भी अनेक उपसम्प्रदाय, पूर्वमध्यकालीन सिद्धों और जोगियों के पन्थ जिनमें तान्त्रिक, अघोरी और वाममार्गी भी सम्मिलित हैं, मध्यकालीन निर्गुण एवं सगुण सन्त परम्पराएँ, आधुनिकयुगीन आर्यसमाज, प्रार्थनासमाज, राधास्वामी मत आदि तथा असंख्य देवी-देवताओं की पूजा, भक्ति जिनमें नाग, वृक्ष, ग्राम्यदेवता, वनदेवता, आदि भी सम्मिलित हैं, नानाप्रकार के अन्धविश्वास, जादू-टोना, इत्यादि- में से प्रत्येक भी और ये सब मिलकर भी 'हिन्दूधर्म' संज्ञा से सूचित होते हैं। इस हिन्दूधर्म की प्रमुख विशेषताएँ हैं ऋग्वेदादि

ब्राह्मणीय वेदों को प्रमाण मानना, ईश्वर को सृष्टि का कर्ता, पालनकर्ता और हर्ता मानना, अवतारवाद में आस्था रखना, वर्णाश्रम धर्म को मान्य करना, गो एवं ब्राह्मण की देवता तुल्य पूजा करना, मनुस्मृति आदि स्मृतियों को व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन-व्यापार का नियामक विधान स्वीकार करना, महाभारत, रामायण एवं ब्राह्मणीय पुराणों को धर्मशास्त्र मानना, मृत पित्रों का श्राद्धतर्पण पिण्डदानादि करना, तीर्थस्नान को पुण्य मानना, विशिष्ट देवताओं को हिंसक पशुबलि कभी नरबलि भी देना, इत्यादि।

हिन्दूधर्म की इन बातों में से एक भी बात ऐसी नहीं है जो जैनधर्म में मान्य हो और न जैनधर्म का इस हिन्दूधर्म के उपर्युक्त किसी भी भेद-प्रभेद, दर्शन, सम्प्रदाय, उप-सम्प्रदाय आदि में ही समावेश होता है। अतएव हिन्दू धर्म के अनुयायी हिन्दुओं का जैनधर्म के अनुयायी जैनों के साथ उसीप्रकार कोई एकत्व नहीं है जैसा कि बौद्धों, पारसियों, यहूदियों, ईसाईयों, मुसलमानों, सिक्खों आदि के साथ नहीं है, यद्यपि एतद्देशीयता को एवं सामाजिक सम्बन्धों एवं संसर्गों की दृष्टि से उन सबकी अपेक्षा भारतवर्ष के जैन एवं हिन्दू परस्पर में सर्वाधिक निकट हैं। दोनों ही भारत माँ के लाल हैं, दोनों के ही सम्बन्ध सर्वाधिक चिरकालीन हैं, इन दोनों में से किसी के भी कभी भी कोई स्वदेश बाह्य (एक्स्ट्रा टेरिटोरियल) स्वार्थ नहीं रहे, जातीय, राष्ट्रीय, राजनैतिक एवं भौगोलिक एकत्व दोनों का सदैव से अटूट रहा है, दोनों ही देश की समस्त सम्पत्ति विपत्तियों में समानरूप से भागी रहे हैं और उसके हित एवं उत्कर्ष साधन में समानरूप से साधक रहे हैं। कतिपय अपवादों को छोड़कर इन दोनों में परस्पर सौहार्द भी प्रायः बना ही रहा है।

इस वस्तुस्थिति को सभी विशेषज्ञ विद्वानों ने और राजनीतिज्ञों ने भी समझा है और मान्य किया है। प्रो. रामा स्वामी आयंगर के शब्दों में 'जैनधर्म, बौद्धधर्म अथवा ब्राह्मण धर्म (हिन्दूधर्म) से निसृत तो है ही नहीं, वह भारतवर्ष का सर्वाधिक प्राचीन स्वदेशी धर्म रहा है' (जैन गजट, भा. 16, पृ. 216)। प्रो. एफ. डब्ल्यू टामस के अनुसार 'जैनधर्म ने हिन्दूधर्म के बीच रहते हुए भी प्रारंभ से वर्तमान पर्यन्त अपना पृथक् एवं स्वतन्त्र संसार अक्षुण्ण बनाए रखा है।' (लिंगसी आफ इंडिया, पृ. 212) 'कल्चरल हेरिटेज आफ इंडिया' सीरीज की प्रथम जिल्द (श्री रामकृष्ण शताब्दी 'ग्रन्थ) के पृ. 185-188 में भी जैनदर्शन का हिन्दू-दर्शन जितना प्राचीन एवं उससे स्वतंत्र होना प्रतिपादित किया है। भारतीय न्यायालयों में भी हिन्दू-जैन प्रश्न की मीमांसा हो चुकी है। मद्रास हाईकोर्ट के भूतपूर्व जज तथा विधानसभा

के सदस्य टी.एन. शेषागिरि अय्यर ने जैनधर्म के वैदिक धर्म जितना प्राचीन होने की सभावना व्यक्त करते हुए यह मत दिया था कि जैनलोग हिन्दू डिसेन्टर्स (हिन्दू धर्म से विरोध के कारण हिन्दुओं में से ही निकले हुए सम्प्रदायी) नहीं हैं और यह कि वह इस बात को पूर्णतया प्रमाणित कर सकते हैं कि सभी जैनी वैश्य नहीं हैं अपितु उनमें सभी जातियों एवं वर्गों के व्यक्ति हैं। मद्रास हाईकोर्ट के चीफ जज (प्रधान न्यायाधीश) माननीय कुमारस्वामी शास्त्री के अनुसार 'यदि इस प्रश्न का विवेचन किया जाए तो मेरा निर्णय यही होगा कि आधुनिक शोध-खोज ने यह प्रमाणित कर दिया है कि जैनलोग हिन्दू डिसेन्टर्स नहीं हैं, बल्कि यह कि जैन धर्म का उदय एवं इतिहास उन स्मृतियों एवं टीकाग्रन्थों से बहुत पूर्व का है जिन्हें हिन्दून्याय (कानून) एवं व्यवहार का प्रमाणस्रोत मान्य किया जाता है... वस्तुतः जैनधर्म उन वेदों की प्रमाणिकता को अमान्य करता है जो हिन्दूधर्म की आधारशिला है, और उन विविध संस्कारों की उपादेयता को भी, जिन्हें अत्यावश्यक मानते हैं, अस्वीकार करता है।' (आल इंडिया लॉ रिपोर्टर, 1927, मद्रास 228) और बम्बई हाईकोर्ट के न्यायाधीश राँगनेकर के निर्णयानुसार 'यह बात सत्य है कि जैनजन वेदों के आप्तवाक्य होने की बात को अमान्य करते हैं और मृतव्यक्ति की आत्मा की मुक्ति के लिए किए जानेवाले अन्त्येष्टि संस्कारों, पितृतर्पण, श्राद्ध पिण्डदान आदि से सम्बन्धित ब्राह्मणीय सिद्धान्तों का विरोध करते हैं। उनका ऐसा कोई विश्वास नहीं है कि औरस या दत्तक पुत्र पिता का आत्मिक हित (पितृ-उद्धार आदि) करता है। अन्त्येष्टि के संबंध में भी ब्राह्मणीय हिन्दुओं से वे भिन्न हैं और शवदाह के उपरान्त (हिन्दुओं की भाँति) कोई क्रियाकर्म आदि नहीं करते। यह सत्य है, जैसा कि आधुनिक अनुसंधानों ने सिद्ध कर दिया है, कि इस देश में जैनधर्म ब्राह्मणधर्म के उदय के अथवा उसके हिन्दूधर्म में परिवर्तित होने के बहुत पूर्व से प्रचलित रहा है। यह भी सत्य है कि हिन्दुओं के साथ जो कि इस देश में बहुसंख्यक रहे हैं, चिरकालीन निकट सम्पर्क के कारण जैनों ने अनेक प्रथाएँ और संस्कार भी जो ब्राह्मणधर्म से संबंधित हैं तथा जिनका हिन्दूलोग कट्टरता से पालन करते हैं, अपना लिए हैं।' (आप इंडिया लॉ रिपोर्टर, 1939, बम्बई 377) स्व. पं. जवाहरलाल नेहरू ने भी अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'डिस्कवरी आफ इंडिया' में लिखा है कि 'जैनधर्म और बौद्धधर्म निश्चय से न हिन्दूधर्म हैं और न वैदिकधर्म ही, तथापि उन दोनों का जन्म भारतवर्ष में हुआ और वे भारतीय जीवन, संस्कृति एवं दार्शनिक चिन्तन के अभिन्न-अविभाज्य अङ्ग रहे हैं। भारतवर्ष का

जैनधर्म अथवा बौद्धधर्म भारतीय विचारधारा एवं सभ्यता की शत-प्रतिशत उपज है, तथापि उनमें से कोई भी हिन्दू नहीं है। अतएव भारतीयसंस्कृति को हिन्दूसंस्कृति कहना भ्रामक है।'

ऐतिहासिक दृष्टि से भी, वेदों तथा वैदिकसाहित्य में वेदविरोधी ब्रह्मण्यो या श्रमणों को वेदानुयायियों- ब्राह्मणों आदि से पृथक् सूचित किया है। अशोक के शिलालेखों (3री शती ई.पू.) में भी श्रमणों और ब्राह्मणों का सुस्पष्ट पृथक्-पृथक् उल्लेख है। यूनानी लेखकों ने भी ऐसा ही उल्लेख किया और खारवेल के शिलालेख में भी ऐसा ही किया गया। 2री शती ई.पू. में ब्राह्मणधर्म पुनरुद्धार के नेता पतञ्जलि ने भी महाभाष्य में श्रमणों एवं ब्राह्मणों को दो स्वतंत्र प्रतिस्पर्द्धाओं एवं विरोधी समुदायों के रूप में कथन किया। महाभारत, रामायण, ब्राह्मणीय पुराणों, स्मृतियों आदि से भी यह पार्थक्य स्पष्ट है। ईस्वी सन् के प्रथम सहस्राब्द में स्वयं भारतीयजनों में इस विषय पर कभी कोई शंका, भ्रम या विवाद ही नहीं हुआ कि जैन एवं ब्राह्मणधर्म एक हैं- यही लोकविश्वास था कि स्मरणातीत प्राचीन काल से दोनों परम्पराएँ एक-दूसरे से स्वतंत्र चली आई हैं। मुसलमानों ने इस देश के निवासियों को जातीय दृष्टि से सामान्यतः हिन्दू कहा, किन्तु शीघ्र ही यह शब्द शैव-वैष्णवादि ब्राह्मणधर्मियों के लिए ही प्रायः प्रयुक्त करने लगे क्योंकि उन्होंने यह भी निश्चय कर लिया था कि उनके अतिरिक्त यहाँ एक तो जैन परम्परा है जिसके अनुयायी अपेक्षाकृत अल्पसंख्यक हैं तथा अनेक बातों में बाह्यतः उक्त हिन्दुओं के ही सदृश भी हैं, वह एक भिन्न एवं स्वतंत्र परम्परा है। मुगलकाल में अकबर के समय से ही यह तथ्य सुस्पष्ट रूप से मान्य भी हुआ। अंग्रेजों ने भी प्रारंभ में, मुसलमानों के अनुकरण से, सभी मुसलमानेतर भारतीयों को हिन्दू समझा किन्तु शीघ्र ही उन्होंने भी कथित हिन्दुओं और जैनों की एक-दूसरे से स्वतंत्र संज्ञाएँ स्वीकार कर लीं। सन् 1831 से ब्रिटिश शासन में भारतीयों की जनगणना लेने का क्रम भी चालू हुआ, सन् 1831 से तो वह दशाब्दी जनगणना क्रम सुव्यवस्थित रूप से चालू हो गया। इन गणनाओं में 1831 से 1941 तक बराबर हिन्दुओं और जैनियों की संख्याएँ पृथक्-पृथक् सूचित की गईं। 15 अगस्त 1947 को हमारा देश स्वतन्त्र हुआ और सार्वजनिक नेताओं के नेतृत्व में यहाँ स्वतन्त्र सर्वतन्त्र प्रजातन्त्र की स्थापना हुई। किन्तु 1948 में जो जनगणना अधिनियम पास किया गया उसमें यह नियम रक्खा गया कि जैनों को हिन्दुओं के अन्तर्गत ही परिगणित किया जाय- एक स्वतन्त्र समुदाय के रूप में पृथक् नहीं। इस पर जैनसमाज में बड़ी हलचल गयी। स्व.

आचार्य शान्तिसागरजी ने कानून के विरोध में आमरण अनशन ठान दिया, जैनों के अधिकारियों को स्मृतिपत्र दिए, उनके पास डेपुटेशन भेजे। फलस्वरूप राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री तथा अन्य केन्द्रीय मन्त्रियों ने जैनों को आश्वासन दिये कि उनकी उचित मांग के साथ न्याय किया जाएगा।

जैनों की मांग थी कि उन्हें सदैव की भांति 1951 की तथा उसके पश्चात् होनेवाली जनगणनाओं में एक स्वतन्त्र धार्मिक समाज के रूप में उसकी पृथक् जनसंख्या के साथ परिगणित किया जाय। उनका यह भी कहना था कि वे अपनी इस मांग को वापस लेने के लिए तैयार हैं यदि जनगणना में किसी अन्य सम्प्रदाय या समुदाय की भी पृथक् गणना न की जाय और समस्त नागरिकों को मात्र भारतीय रूप में परिगणित किया जाय। (देखिए, हिन्दुस्थान टाइम्स 6-2-50)।

जैनों का डेपुटेशन अधिकारियों से 5 जनवरी 1950 को मिला। डेपुटेशन के नेता एस.जी. पाटिल थे। इस अवसर पर दिये गये स्मृति-पत्र में हरिजनमंदिर-प्रवेश अधिनियम तथा बम्बई बैगर्स एक्ट को भी जैनों पर न लागू करने की माँग की। अधिकारियों ने जैनों की मांग पर विचार-विमर्श किया और अन्त में भारत के प्रधानमंत्री नेहरूजी ने यह आश्वासन दिया कि भारतसरकार जैनों को एक स्वतन्त्र-पृथक् धार्मिक समुदाय मानती है और उन्हें यह भय करने की कोई आवश्यकता नहीं है कि वे हिन्दूसमाज के अङ्ग मान लिए जाएँगे यद्यपि वे और हिन्दू अनेक बातों में एक रहे हैं। (हि.टा. 2-2-50) प्रधानमंत्री के प्रमुख सचिव श्री ए.के. श्री एस.जी. पाटिल के नाम लिखे गये 31-1-50 के पत्र में जैन बनाम हिन्दू सम्बन्धी सरकार की नीति एवं वैधानिक स्थिति सुस्पष्ट कर दी गई है। शिक्षामंत्री मौलाना अबुलकलाम आजाद ने भी श्री पाटिल को लिखे गये अपने पत्र में उक्त आश्वासन की पुष्टि की और आशा व्यक्त की कि आचार्य शान्तिसागर जी अब अपना अनशन त्याग देंगे। यह भी लिखा कि अपनी स्पष्ट इच्छाओं के विरुद्ध कोई भी समूह किसी अन्य समुदाय में सम्मिलित नहीं किया जाएगा। (वही, 6-2-50) लोकसभा में उपप्रधानमंत्री सरदार वल्लभ भाई पटेल ने बलवन्तसिंह मेहता के प्रश्न के उत्तर में सूचित किया कि जनगणना में धर्म शीर्षक के अन्तर्गत हिन्दू और जैन पृथक्-पृथक् परिगणित किये जाएँगे (वही, 6-2-50)।

इसी बीच स्व. ला. तनसुखराय ने अखिल भारतीय जैन एसोशिएसन के मंत्री के रूप में उपरोक्त मेमोरेण्डम के औचित्य पर आपत्ति की (वही, 4-2-50) और अपने वक्तव्य में उन्होंने इस बात पर बल दिया कि शब्द हिन्दू जातीयता

सूचक है, राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टियों से जैन, हिन्दुओं से पृथक् नहीं हैं किन्तु उनकी अपनी पृथक् संस्कृति है।

कुछ लोगों ने जैनों के इस क्वचित् आन्तरिक मतभेद का लाभ उठाया आम जैनों का उपहास किया, उन पर लांछन लगाये, उनकी निन्दा और भर्त्सना की कि वे अपने आपको 'हिन्दूइज्म' से पृथक् करना चाहते हैं, अल्पसंख्यक करार दिये जाकर राजनैतिक अधिकार लेना चाहते हैं, पृथक् विश्वविद्यालय की मांग द्वारा इस धर्मनिरपेक्ष राज्य में अपने धर्म का प्रचार करना चाहते हैं, इत्यादि (ईवनिंग न्यूज 14-3-50 में किन्हीं फर्जी राइट एग्नाल साहब का लेख) वीर अर्जुन (11-9-49) आदि में इसके पूर्व भी जैनों को स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार करने के विरुद्ध लेख निकल चुके थे कुछ पत्रों में इसके बाद भी निकले। इसप्रकार के लेख साम्प्रदायिक मनोवृत्ति से प्रेरित होकर लिखे गए थे और बहुसंख्यक वर्ग द्वारा जैनविद्वेषी संकीर्ण मनोवृत्ति का परिचय दिया गया था जिसे बीच-बीच में यत्र-तत्र बहुसंख्यकों द्वारा जैनों पर किये गये धार्मिक अत्याचारों का श्रेय है। जिन विद्वानों, विशेषज्ञों, न्यायविदों एवं राजनीतिज्ञों के मत इसी लेख में पहिले प्रगट किये जा चुके हैं वे प्रायः उसी कथित हिन्दूधर्म के अनुयायी थे या हैं, किन्तु वे मनस्वी, निष्पक्ष और न्यायशील हैं- धर्मान्ध या साम्प्रदायिक मनोवृत्ति के नहीं। अल्पसंख्यक समुदाय बहुसंख्यक समुदाय से वैसे ही भय से रहता है जो बहुसंख्यकों के सौहार्द एवं सौभाग्य से दूर होता है, संख्या बल द्वारा दबा देने की मनोवृत्ति से नहीं।

इन लेखों का एक असर यह हुआ कि कुछ जैनों ने, जिनमें स्व. ला. तनसुखराय प्रमुख थे समाचारपत्रों में अनेकों लेखों एवं टिप्पणियों द्वारा कथित हिन्दुओं के इस भ्रम और आशंका कि जैन हिन्दुओं से पृथक् हैं का निवारण करने का भरसक प्रयत्न किया। इसकी शायद वैसे और उतनी आवश्यकता नहीं थी। 1954 में जब हरिजनमंदिर-प्रवेश आन्दोलन ने उग्ररूप धारण किया तब भी जैनों में दो पक्ष से दीख पड़े और उस समय भी ला. तनसुखराय ने यही प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया कि जैन हिन्दुओं से पृथक् नहीं हैं। सन् 1949-50 से 1954-55 तक के विभिन्न समाचारपत्रों में इन विषयों से सम्बन्धित समाचारों, टिप्पणियों आदि की कटिंग्स वह एकत्रित करके छोड़ गये हैं। उनके अवलोकन से यही लगता है कि ला. तनसुखरायजी को यह आशंका और भय था कि कही धर्म और संस्कृति संरक्षण के मोह के

कारण जैनों ने स्वातन्त्र संग्राम में जो धन-जन की प्रभूति आहुति दी है- अपनी संख्या के अनुपात से कहीं अधिक और देश को एवं राष्ट्र की सर्वतोमुखी उन्नति में जो महत्त्वपूर्ण योगदान किया है और कर रहे हैं कि उस पर पानी न फिर जाय। और फिर कुछ नेतागिरि का भी नशा होता है। वरना अपनी सत्ता का मोह होना, अपने स्वत्त्वों, परम्पराओं एवं संस्कृति के संरक्षण में प्रयत्नमान रहना तो कोई अपराध नहीं है, वह तो सर्वथा उचित एवं श्रेष्ठ कर्तव्य है, केवल यह ध्यान रखना उचित है कि देश और राष्ट्र के महान हितों से कहीं कोई विरोध न हो और किसी अन्य समुदाय से किसी प्रकार का द्वेष या वैमनस्य न हो, सहअस्तित्व का भाव ही प्रधान हो और समष्टि के बीच व्यष्टि भी निर्विरोध रूप से अपना सम्मानपूर्ण अस्तित्व बनाये रख सके।

अस्तु, इस सम्पूर्ण विवेचन से यही निष्कर्ष निकलता है कि भले ही मूलतः हिन्दू शब्द विदेशी हो, अर्वाचीन हो, देशपरक एवं जातीयता सूचक हो, उसका रूढ़ अर्थ, जो अनेक कारणों से लोक प्रचलित हो गया है, एक धर्मपरम्परा विशेष के अनुयायी ही हैं और उनका धर्म हिन्दूधर्म है। हिन्दू और भारतीय दोनों शब्द पर्यायवाची नहीं हैं- कम से कम भारत के भीतर नहीं हैं, भारत के बाहर तो भारतीय मुसलमानों को भी कभी-कभी हिन्दू कहा गया है। जिस प्रकार भारत के बौद्ध, सिक्ख, पारसी, ईसाई, मुसलमान, यहूदी, ब्रह्मसमाजी आदि भारतीय तो हैं किन्तु हिन्दू नहीं उसी प्रकार जैन भी भारतीय तो हैं उससे कुछ अधिक हैं, तथापि वे जिन अर्थों में आज हिन्दू शब्द रूढ़ हो गया है उन अर्थों में हिन्दू नहीं हैं। शब्द का जो रूढ़ और प्रचलित अर्थ होता है वही मान्य किया जाता है- किसी समय 'पाखण्ड' शब्द का अर्थ 'धर्म' होता था, किन्तु आज ढोंग, झूठ और फरेब होता है, अतः यदि आज किसी धर्म को पाखण्ड कह दिया जाय तो भारी उत्पात हो जाय। इसप्रकार के अन्य अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं।

हिन्दू और जैन शब्दों के भी जो अर्थ लोक प्रचलित हैं जनसाधारण द्वारा समझे जाते हैं, उन्हीं की दृष्टि से इस समस्या पर विचार किया जाना उचित है।

'श्री तनसुखराय जैन स्मृति ग्रन्थ' से साभार
सम्पादक- जैनेन्द्र कुमार जैन इत्यादि
प्रकाशक- श्रीमती अशाफीदेवी जैन,
21, अंसारी रोड, दरियागंज, दिल्ली।

भारत के मुस्लिम स्मारकों पर जैन स्थापत्य कला का प्रभाव

डॉ. डब्ल्यू.एच.सिद्दीकी
पूर्वनिदेशक, भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण

विश्व के सभी धर्मों का विकास अपनी-अपनी परिस्थितियों के अनुसार होता रहा है और सभी सम्प्रदायों में हर युग में समकालीन आवश्यकताओं के तहत तीर्थङ्करों और अवतारों द्वारा नवीन विचारों एवं पूजा-पाठ की विधियाँ विकसित होती रही हैं।

2. साथ ही साथ एक दूसरे को परस्पर प्रभावित किया है। इसी सिलसिले से एक बहुत बड़े साहित्य का भंडार जमा हो गया है। खेद की बात यह है कि अपने-अपने धर्म के साहित्य को आचार्य एवं शिक्षित लोगों ने जानने का प्रयास किया है परन्तु बहुत कम ऐसा हुआ है कि किसी एक धर्म के मानने वालों ने दूसरे धर्म के बारे में भी उनसे कुछ जानने की कोशिश की हो जितना वह अपने धर्म के बारे में जानता है। इसीकारण धर्मों के सामूहिक विकास की गति ऐसी नहीं हुई जैसी कि होनी चाहिए। धार्मिकसाहित्य विशेषकर भारतीयधर्मों का साहित्य मानवजाति की सबसे बड़ी धरोहर है। आज के वैज्ञानिक युग में भी पश्चिमी देशों के लोग अपने यहाँ इस साहित्य की कमी महसूस करते हुए, भारत की ओर आशाभरी निगाहों से देख रहे हैं।

3. भारतीयधर्मों में जैनधर्म का विकास अत्यन्त प्राचीन एवं महत्त्वपूर्ण रहा है। इसका योगदान मानवजाति के लिए शांति एवं स्नेह का प्रतीक रहा है। बौद्धमत ने भी इसीपथ पर चलकर विश्व के एक बड़े हिस्से पर अपने धार्मिक विचारों, दर्शन, कला और विशेषकर मूर्तिकला के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

4. भारतीयधर्मों की पृष्ठभूमि देखी जाए तो इस्लाम धर्म एक नवीनतम धर्म है जिसको हजरत मोहम्मद ने आज से 1400 वर्ष पूर्व सउदी अरब में चलाने का प्रयास किया। ऐतिहासिक लेखों एवं प्राचीन परम्पराओं के अनुसार भारतीय धर्मों का प्रभाव पश्चिमी एशिया के प्राचीन धर्मों पर काफी पड़ चुका था। इसी कारण काबा के इमारती प्लान पर भारतीय प्राचीन मंदिर का प्रभाव दिखाई देता है। काबाई की बुनियाद तुगलक इब्राहिम ने डाली थी जिनका समय ईसा से सैकड़ों वर्ष पूर्व का है लेकिन बाद में इस इमारती ढाँचे में तब्दीली होती रही और मरम्मत

भी होती रही। हजरत मुहम्मद के जमाने के ढाँचे का एक हिस्सा अर्ध-गोलाकार था।

5. हजरत मोहम्मद अपने जीवन काल में भारत की पावन-भूमि के लिए बड़े अच्छे शब्दों में याद करते थे। उन्होंने यह भी कहा कि मुझे भारत से पावन सुगन्ध आती है। काबे में इबादत (पूजा) की जो विधि है वह काबे के चारों ओर सात बार परिक्रमा करने से पूरी होती है जो आम जमाने में 'उमरा' कहलाती है और खास मौके पर जब यह परिक्रमा और बहुत सी रस्मों के साथ साल में एक बार की जाती है तो उसे हज कहते हैं। हज के समय में जो कपड़े पहने जाते हैं उसमें दो चादर होती हैं एक लुंगी के समान बाँधी जाती है और दूसरी कंधे के ऊपर ओढ़ी जाती है। इसी तरह दूसरा कंधा नंगा रहता है। परिक्रमा पूरी करने के बाद लोग अपना सिर मुंडवाते हैं। उससमय कोई, किसी मनुष्य, किसी जानवर, किसी कीड़े-मकोड़े को कोई हानि नहीं पहुँचा सकता। इसतरह सम्पूर्ण अहिंसा के साथ हज की रस्म अदा होती है। इस पूरी रस्म को यदि ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में देखा जाए तो इस परम्परा की बुनियाद भारतवर्ष में ही मिलती है।

6. इस्लाम में यह विश्वास दिलाया गया है कि इस सृष्टि का रचयिता केवल एक है जिसे रब्बुल आल्मीन या अल्लाह कहते हैं और यह भी विश्वास दिलाया गया है कि इस अल्लाह या भगवान् में यकीन रखनेवाले का धर्म है कि वह हजरत मोहम्मद के पहले के सारे पैगम्बर एवं अवतार और उनकी लाई हुई किताबों पर यकीन रखे और यह भी कहा गया है कि धरती का कोई चप्पा ऐसा नहीं है जहाँ अवतार या पैगम्बर नहीं भेजे गए।

7. इस्लाम के अनुसार अल्लाह मनुष्य के कर्म से ही उसके अच्छे बुरे होने का निर्णय लेगा। केवल इसलिए नहीं कि वह इस्लाम को मन ही मन मानने वाला है।

8. इस्लाम में जिस सिद्धान्त पर सबसे अधिक जोर दिया गया है वह अरबी में 'तकवा' कहलाता है तकवा के मायने हैं- अल्लाह से डरना और कोई ऐसा काम न करना जिससे किसी जानवर को कोई हानि पहुँचे। यह भी कहा गया है कि अपने परस्पर व्यवहार में भी अपनी

जुबान से, अपने हाथ से या अपने कार्यों से कोई ऐसा कार्य न करे जिससे किसी की जान-माल या मर्यादा को ठेस पहुँचे। इस सिद्धान्त को कुरान में और हजरत मोहम्मद की वाणी में बार-बार दोहराया गया है। इस सिद्धान्त को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में देखा जाए तो इसका भारतीयधर्मों से गहरा नाता दिखाई देता है और विशेषकर जैनमत का प्रभाव दिखाई देता है। यह और बात है कि अब इस्लाम को मानने वाले इस सिद्धान्त पर किस हद तक अमल करते हैं। यह बात तो सभी धर्मों पर पूरी उतरती है क्योंकि आधुनिक जीवन में लोगों ने अपने मूलसिद्धान्त से रिश्ता तोड़ लिया है।

9. आज जिस इस्लामी कला या स्थापना का नाम लिया जाता है वह हजरत मोहम्मद के जीवन काल में खास महत्त्व नहीं रखती। उन्होंने यह कहा था कि भगवान् के मानने वालों के लिए थोड़े दिनों के अस्थाई जीवन में अपने धन को कीमती भवनों के निर्माण पर खर्च करना व्यर्थ है। इसीलिए उनका अपना घर और उनके खलिफाओं के भवन मिट्टी और गारे के बने हुए थे जिनके अब चिह्न भी नहीं मिलते।

10. हजरत मोहम्मद ने अपने सहयोगियों के साथ मिलकर मदीना में जो पहली मस्जिद का निर्माण किया था। वह भी मिट्टी और गारे की बनी हुई थी और जिसकी छत में खजूर के तने शहतीर की शकल में लगे हुए थे और उन पर मिट्टी की छत थी। मस्जिद का आकार एक बड़े अहाते का था जिसका द्वार दक्षिण में था और उसका एक हिस्सा हजरत मोहम्मद के घर से जुड़ा हुआ था उनके निधन पर उन्हें उसी भवन में दफना दिया गया, जहाँ आज बड़ा ही सुन्दर मकबरा बना हुआ है। पुरानी मस्जिद की जगह एक आलीशान मीनारों वाली मस्जिद बनी हुई है जिसे अब हरम कहते हैं।

11. इस्लाम के आरम्भ से ही मुसलमान अरब व्यापारी दक्षिण और पश्चिम तटवर्ती इलाकों में आकर बस गए थे। जिन्होंने समुद्र के रास्ते अपना व्यापार भारत से पूर्वी यूरोप तक फैलाया। उनके बसने और रहने के लिए हिन्दू राजाओं ने कई सुविधाएँ उपलब्ध कराई, क्योंकि उनके द्वारा भारत व्यापार को बड़ा प्रोत्साहन मिल रहा था। इसीलिए उन राजाओं ने अपने भवनों के साथ-साथ मस्जिदों और मदरसों को बनाने में भी सहयोग दिया था। ये इमारतें सम्भवतः क्षेत्रीय स्थापत्य के आधारों पर बनी थीं जिनका वर्णन अरबी इतिहासकारों ने किया है।

12. सन् 711-12 ई. में खलीफा के सिपहसालार मुहम्मद-बिन-कासिम ने सिंध और पंजाब के कुछ हिस्सों पर कब्जा कर लिया और देवल के प्राचीन सिंधीनगर को अपनी राजधानी बनाया। वहाँ एक संधि के तहत हिंदुओं के मंदिरों को क्षति नहीं पहुँचने दी गई। हिंदुओं के जान-माल की रक्षा की जिम्मेदारी खलीफा की हुक्मत ने ली। उससमय की बनाई हुई मस्जिद के अवशेष भम्भौर के स्थान पर, जो कराची से 60-70 किलोमीटर दूर है, मिले हैं। यह मस्जिद स्तम्भों पर सपाट छत के साथ बनाई गई थी और उसके अभिलेख अरबी-सूफी में हैं जिससे इसकी तारीख मिलती है। अरबों ने एक नया नगर मंसूरा भी आबाद किया था जिसके अवशेष भी पुरातात्विक खुदाई में मिले हैं। उनकी कलाकृति से पता चलता है कि जैनकला का कुछ प्रभाव उस क्षेत्र में पड़ा। खलीफा की हुक्मत डेढ़ सौ साल तक सिंधु, मुल्तान और पंजाब के इलाकों में चलती रही पर उसके अवशेष नहीं के बराबर हैं। ग्यारहवीं शताब्दी में महमूद गजनवी ने भी पंजाब और पश्चिम भारत में कुछ निर्माण कार्य कराया, जिनके अवशेषों का जिक्र अभिलेखों में प्राप्त हुआ है। इसीसमय की एक मस्जिद भट्टौच (गुजरात) में है जो समय के साथ-साथ मरम्मत होने के कारण अपनी प्राचीन शकल में नहीं है, फिर भी मस्जिद की पूजा का हॉल लकड़ी के स्तम्भ और संगमरमर की बेसिस पर आधारित है जिसकी नक्काशी जैनमंदिरों की कलात्मक सजावट से मिलती-जुलती है। मंदिर के प्रवेशद्वार की चन्द्रशिला में कीर्तिमुख भी जैनकला का प्रतीक है। इस मस्जिद को गजनवीमस्जिद के नाम से पुकारा जाता है। भारत में इस्लामी कला में जैनकला का प्रभाव इसी मस्जिद से शुरु होता है।

13. 1192 में मुहम्मद-बिन-शाम जिसे मुहम्मद गौरी भी कहते हैं, ने दिल्ली को फतह करके प्राचीन नगर पर कब्जा कर लिया। इसे सुल्तान के सिपहसालार कुतुबुद्दीन ऐबक के कुब्बतुल इस्लाम मस्जिद को एक प्राचीन मंदिर के पत्थर के चबूतरे पर बनाया, जिसमें जैन एवं हिन्दू मंदिरों के द्वार की चौखटें, कार्बल छत, स्तम्भ और कैपिटल को लेकर मस्जिद के दालान और द्वार, मंडप एवं पूजा का हॉल बनाया था। इस मस्जिद के पूर्वोद्धार में कीर्तिमुख जैनकला का प्रतीक है। इसीतरह द्वार मंडप की छतें भी माउंटआबू के प्राचीन मंदिरों की झलक पेश करती हैं। इस मस्जिद के स्तम्भों पर जो अप्सराओं की प्रतिमायें

दिखाई देती हैं वे भी जैन और हिन्दू मूर्तिकला की गवाही देती हैं। उत्तरीद्वार की पत्थर की चौखटें और उनकी नक्काशी भी जैनमंदिरों के द्वार की सजावट से मिलती-जुलती हैं। सुल्तान इल्तुविमश के मकबरे में, जो इस मस्जिद के पीछे पश्चिम-उत्तर में स्थित है, अंदरूनी नक्काशी और महाराब की बनावट, जैनमंदिरों के गहरे आले, जिनमें जैन तीर्थङ्करों की मूर्तियाँ स्थापित हैं, उनकी सजावट से काफी प्रभावित है।

14. सुल्तान इल्तुविमश की बनाई हुई अजमेर में स्थित 'अढ़ाई दिन का झोपड़ा' मस्जिद निर्माणकला में बेजोड़ नमूना है। यह मस्जिद एक प्राचीन इमारत के चबूतरे पर निर्माण कराई गई है। यह दिल्ली सुल्तानों के जमाने की एक पहली मस्जिद की इमारत है जिसमें नए पत्थरों को लेकर और उनकी नक्काशी और सजावट पश्चिम भारत के जैनमंदिरों की कलाकृति से की गई है। मस्जिद में प्रवेश पत्थर की सीढ़ियों से उसके पूर्वीद्वार से किया जाता है जिसकी पत्थर की चौखटें जैननक्काशी की प्रतीक हैं। मस्जिद का पूर्वी ढाँचा अपनी ऊँचाई और महाराबदार द्वारों एवं बेमिसाल अरबी के अभिलेखों के कारण केवल भारत में ही नहीं बल्कि पूरी इस्लामी दुनिया के मस्जिदों के संगतराशी के नमूने में बेजोड़ है।

15. इसके अलावा मस्जिद की गहरी महाराबें संगमरमर की बनी हुई हैं और उनकी फ्रेम की सजावट में फूल-पत्तियों के वे नमूने हैं जो देलवाड़ा के जैनमंदिरों और दूसरे पश्चिमी भारत के मंदिरों में दिखाई देते हैं। यह बात बहुत महत्वपूर्ण है कि पश्चिम एशिया में और विशेषकर भारत, इराक और ईरान की मस्जिदों में मेहराबों की बनावट और सजावट भारत के जैनमंदिरों के हॉलों से बहुत प्रभावित हुई है। उसका विशेष कारण यह था कि पश्चिमी तटवर्तीय इलाकों का उन विदेशी इलाकों से परस्पर बड़ा गहरा व्यापारिक संबंध था। यह बात भी दिलचस्प है कि मंदिरों की छतों की सजावट में इस्लामी सजावट के नमूनों की भी कहीं-कहीं कोशिश की गई है। इससे सांस्कृतिक लेन-देन का पता चलता है।

16. यह बात विचारणीय है कि एक मंदिर में 3-4 मंडप होते हैं और उसमें 3-4 ही कार्बल की छतें हैं जिन पर कमल आदि फूलों की पंखुड़ियों एवं कीर्तिमुख इत्यादि की नक्काशी होती है। लेकिन जिनकी ऊँचाई किसी मंदिर के स्तम्भ में दिखाई नहीं देती। इसकी धरती

(केपिटल) को पंखुड़ी की तरह तराशा गया है। इसमें 2 दर्जन के करीब कार्बल छतें हैं जिनकी नक्काशी अलग-अलग है जिसमें खासकर कल्पवृक्ष की और कमल की पंखुड़ियों आदि की सजावटें आबू के मंदिरों की छतों से मिलती-जुलती तो हैं ही, कारीगरी और नजाकत अद्भूत है। हिन्दुस्तान में शायद ही ऐसी कोई इस्लामी इमारत हो जिसमें हिन्दू और जैनमंदिरों की आर्ट के नमूने इतनी खूबसूरती से संजोए गए हों।

17. गुजरात में खिलजी और तुगलककालीन मस्जिदों में मुख-द्वार से लेकर सामने की दीवार महाराबी, दरवाजे, स्तंभ के धरणी एवं पश्चिमी दीवार की गहरी महाराबें जैन कलाकृति से भरे हुए हैं जिनमें विशेषकर भड़ौच की खिलजी ईदगाह और मस्जिद एवं वहीं की जामामस्जिद देखने योग्य है। हालाँकि अधिकांश पत्थर नए हैं लेकिन कहीं-कहीं जैनमंदिरों के कीर्तिमुख बड़े ही मनोरम हैं। पत्थर की शिलों और द्वार की चौखटें आज भी जैनमंदिरों की कलात्मक परम्पराओं के प्रतीक हैं। इनमें फूल-पत्तियों के अलावा उस मूर्तिकला के नमूने भी देखने को मिलते हैं। साथ ही साथ कमल की कलियों के हार महाराबों के फ्रेम में बड़ी खूबसूरती से संजोए गए हैं। कार्बल की छतें जिनमें सितारों के आकार की सजावट दर्शनीय है वह देलवाड़ा के प्रसिद्ध मंदिरों की छतों से बहुत मिलती-जुलती हैं।

18. अहमदाबाद के ढोलका जिले में तुगलककालीन अलीफ खान की मस्जिद, जिसका मुखद्वार जैनमंदिरों के मंडपों के आकार का है, उस पर की गई फूल-पत्ती की नक्काशी के अलावा सभी कुछ जैनमंदिरों जैसा है। विशेषकर उसके तोरण एवं शहतीरें। मस्जिद के हॉल की छतें ओर महाराबें भी जैनआर्ट के सौंदर्य को प्रदर्शित करती हैं।

19. 15वीं शताब्दी के मशहूर संत शेखअहमद खट्ट सुल्तान अहमद शाह के पीरों में से थे। वे सरखेज में खानका में रहते थे और अहमद शाह ने जब अहमदाबाद नगर की बुनियाद डाली तो उन्होंने ही पहली ईंट अपने करकमलों द्वारा रखी थी।

20. उनका मकबरा अहमद शाह के बेटे मुहम्मद शाह ने सरखेज में ही बनवाया। इस विशाल पत्थर के सुंदर मकबरे के सामने एक मंडपा है जो जैन और हिन्दू मंदिरों के उन मंडपों से मिलता-जुलता है जिसमें भगवान

की मूर्तियाँ झूलों पर रखकर झुलाई जाती थीं। इसी लिहाज से यह मंडप जो इस मकबरे के सामने है, वह भारतवर्ष में और किसी मकबरे के सामने दिखाई नहीं देता। यह बात देखने की है कि एक संत के मकबरे के सामने बनाया हुआ मंडप का आकार जैन और हिन्दू मंदिरों के आकार की हूबहू तस्वीर है। इस मकबरे की जालियों का विकास देखना हो तो निगाह माउंटआबू के देलवाड़ा मंदिरों की ओर चली जाती है। इसी कला ने सीदी सईद की मस्जिद को पूरी दुनिया में मशहूर कर दिया। वह दुनिया में बेमिसाल समझी जाती है जिसकी कारीगरी जैन और हिन्दू मंदिरों के संगतराशों ने की है। इसी अद्भुत संगतराशी के नमूने रानी सबराई (पिसरी) की मस्जिद और मकबरे और रानी रूपमती की मस्जिद और मकबरे में दिखाई देते हैं।

21. अकबर बादशाह ने जब फतेहपुर सीकरी के महल और भवन का निर्माण किया तो गुजरात के जैन संगतराश और कारीगरों को भी आमंत्रित किया, जिनके नाम गुजराती लिपि में जगह-जगह पत्थरों पर आज भी दिखाई देते हैं। फतेहपुर सीकरी की इमारतों में मकरतोरण, गजतोरण और दूसरी सजावटें पश्चिमी भारत के जैनमंदिरों की कला को अपने सीने से लगाए हुए हैं। इसीतरह का लहराता तोरण गुजरात में मोढेरा के सूर्यमंदिर एवं देलवाड़ा के जैनमंदिरों के मंडपों के तोरण से लिए गए हैं। फतेहपुर सीकरी में उसकी जामामस्जिद की छतों में भी मकर तोरण की सजावट है।

अतः सिद्ध है कि जैनकला का प्रभाव मुस्लिम स्मारकों पर काफी गहरा पड़ा है।

‘संस्कार सागर : जुलाई 1999’ से साभार

भगवान् नमिनाथ

जम्बूद्वीप संबंधी भरतक्षेत्र के वंग देश की मिथिला नगरी में भगवान् वृषभदेव के वंशज, काश्यपगोत्री विजय महाराज राज्य करते थे। उनकी महादेवी का नाम वपिला था। वपिला महादेवी ने आषाढ़ कृष्ण दशमी के दिन स्वाती नक्षत्र में अपराजित विमानवासी अहमिन्द्र को तीर्थकर सुत के रूप में जन्म दिया। भगवान् मुनिसुव्रतनाथ तीर्थकर की तीर्थपरम्परा में जब साठ लाख वर्ष बीत चुके थे तब नमिनाथ तीर्थङ्कर का जन्म हुआ था। उनकी आयु भी इसी अन्तराल में शामिल थी। उनकी आयु दस हजार वर्ष की थी। शरीर पन्द्रह धनुष ऊँचा और कान्ति सुवर्ण के समान थी। जब उनके कुमारकाल के ढाई हजार वर्ष बीत गये तब उन्हें राज्य प्राप्त हुआ। राज्य करते हुए भगवान् को जब पाँचहजार वर्ष बीत गये तब एक दिन महाराज नमिनाथ हाथी पर आरूढ़ होकर वन-विहार के लिए गये। वहाँ दो देवकुमारों द्वारा दर्शन कर सुनाये गये विदेहक्षेत्र स्थित अपराजित तीर्थङ्कर के साथ अपने पूर्वभवों के संबंध सुनकर महाराज नमिनाथ प्रबोध को प्राप्त हुए। वापस नगरी में लौटकर सप्रभ नामक पुत्र को राज्य प्रदान किया और आषाढ़ कृष्ण दशमी के दिन चैत्रवन नामक उद्यान में पहुँचकर

सायंकाल के समय एकहजार राजाओं के साथ दीक्षा धारण की। पारणा के दिन मुनिराज नमिनाथ वीरपुर नगर में गये। वहाँ सुवर्ण के समान कान्तिवाले राजा दत्त ने उन्हें आहारदान देकर पञ्चाश्चर्य प्राप्त किये। तदनन्तर जब छद्मस्थ अवस्था के नववर्ष बीत गये तब वह अपने ही दीक्षावन में बकुल वृक्ष के नीचे बेला का नियम लेकर ध्यानारूढ़ हुए। वहीं पर उन्हें मार्गशीष शुक्ला एकादशी के दिन सायंकाल के समय घातिया कर्म के क्षय से केवलज्ञान प्राप्त हुआ। भगवान् के समवशरण की रचना हुई जिसमें बीसहजार मुनि, पैंतालीस हजार आर्यिकायें, एकलाख श्रावक, तीनलाख श्राविकायें, असंख्यात देव-देवियाँ और संख्यात तिर्यच थे। इस तरह धर्मोपदेश देते हुए उन्होंने आर्यक्षेत्र में विहार किया। जब आयु एक माह की शेष रह गई तब वे भगवान् विहार बन्दकर सम्पेदशिखर पर जा विराजमान हुए। वहाँ उन्होंने एकहजार मुनियों के साथ प्रतिमायोग धारणकर वैशाख कृष्ण चतुदशी के दिन रात्रि के अन्तिम समय अघातिया कर्मों का नाशकर मोक्ष प्राप्त किया।

मुनि श्री समतासागरकृत
‘शलाका पुरुष’ से साभार

बलिहारी गुरु आपकी मारग दियो बताय

डॉ. ज्योति जैन

पूज्य गणेशप्रसाद वर्णी जी महाराज विद्वदनुरागी, निश्छलव्यवहारी, सरलप्रकृति, सहृदयसाधक, दया की प्रतिमूर्ति, मन्दकषायी, धरतीसुत, मधुरभाषी, परमसंतोषी, सात्त्विकता से पूर्ण, सर्वप्रिय, परोपकारी, वस्तुस्वरूपचिंतक, उत्कृष्टत्यागी, आत्मानुशासन के धनी, दृढ़संकल्पी होने के साथ-साथ राष्ट्रभक्त भी थे। आत्मकल्याण के पथ पर चलते-चलते उन्होंने समाजकल्याण की ओर भरपूर ध्यान दिया और अपने जीवन का एक मात्र लक्ष्य अज्ञानता को दूर करना ही बना लिया था। उनका चिंतन शिक्षा और ज्ञान के प्रसार के इर्द-गिर्द ही घुमता रहता था, यही कारण है कि शिक्षा के क्षेत्र में उन्होंने जो कार्य किया उसकी गौरवगाथा आज भी जीवंत है और आगे भी रहेगी। अपनी कर्मठता, लगन और परिश्रम से पूरे उत्तर भारत में उन्होंने जो ज्ञान-मंदिर स्थापित किये उनमें से अधिकांश आज भी हमारे समाज में ज्ञान की ज्योति प्रज्वलित रखे हुए हैं। वर्णी जी का सपना था एक-एक व्यक्ति को शिक्षित करना और इसके लिये जीवन भर जो बन सकता सो उन्होंने किया।

वर्णी जी ने स्थान-स्थान पर ज्ञान के मंदिरों को बनवाया वह भी बिना किसी प्रदर्शन और प्रचार के। न तो उनकी स्थापना में बड़े-बड़े पत्र छपवाये न ही डिंडोरा पीटा। ज्ञान के पुजारियों और व्यक्तियों को परखने की इनकी गजब की शक्ति थी। यूँ कहें कि सही वक्त पर सही आदमी को सही कार्य के लिये चुनना उन्हें प्रकृति प्रदत्त वरदान था। उनकी कसौटी पर ये लोग खरे उतरते थे, उनका पूरा सहयोग मिलता था और वह व्यक्तित्व समाज का रत्न बन जाता था।

वर्णी जी के मन में साधर्मी वात्सल्य का भाव सदैव रहता था। वे समाज की आत्मा को टटोलते रहते थे समाज में कहाँ भेदभाव है कहाँ विवाद है कहाँ संस्कार रूखालित हो रहे हैं कहाँ मंदिर बंद पड़े हैं, कहाँ जैनसिद्धान्त लुप्त हो रहे हैं आदि बातों को सहजता और सरलता से समझकर पूरा करते थे। यह सब करते हुए अपने आत्मकल्याण के पथ से कभी नहीं भटके। अध्ययन, चिंतन, मनन उनका स्वभाव बन गया था यही कारण है कि वे जीवनभर स्वयं विद्यार्थी बने रहे। जीवन के कठोर श्रम और संघर्षों ने उनकी संकल्पशक्ति को इतना दृढ़ बना दिया था कि वे जो भी कार्य करते उसमें उन्हें सफलता मिलती थी। अंतिम समय

में 'समयसार' को अपने जीवन में उतारकर उन्होंने अपनी मनुष्यपर्याय को सार्थक बना लिया।

इस महान् व्यक्तित्व का जन्म झांसी जिले के भड़ावरा परगने में हंसेरा नाम के एक छोटे से गांव में पिता श्री हीरालाल माता श्रीमती उजियारी, वैष्णवपरिवार में बालक गणेशप्रसाद के रूप में हुआ। बचपन से ही जैन मंदिर में होनेवाले शास्त्रप्रवचन के प्रति आस्था ने ही मात्र दस वर्ष की आयु में बालक गणेश को रात्रिभोजनत्याग की ओर प्रेरित किया। गृहस्थ जीवन की ढेरों परेशानियाँ और घटनाओं ने उन्हें विचलित कर दिया और वे चल पड़े शांति की तलाश में उन्होंने जिनधर्म को स्वीकार किया और धर्ममाता के रूप में मिली 'माता चिरोँजाबाई'। वर्णी जी जहाँ एक ओर संघर्षों से जूझते रहे वही दूसरी ओर जैनसिद्धान्तों का पठन-पाठन भी करते रहे। अध्ययन के समय आयी विभिन्न बाधाओं ने विद्यालय की स्थापना की प्रेरणा दी और एक रूपये में चौंसठ पोस्ट कार्ड खरीदकर उन्होंने बनारस स्याद्वाद विद्यालय की नींव रखी और स्वयं इसके प्रथम छात्र बने। इसीतरह सैकड़ों विद्यालय स्थापित कर पूरे उत्तरभारत में ज्ञान का प्रकाश फैला दिया। राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत वर्णी जी ने आजाद हिंद फौज को अपनी चादर दे दी थी।

आज जैनसमाज की सभी शीर्षस्थ संस्थाओं में जितने भी विद्वान् हैं वे सभी वर्णी जी के शिष्य-प्रशिष्य हैं। गुरु परम्परा जो उन्हें मिली उस विरासत को कैसे सम्भाले कैसे अगली पीढ़ी तक पहुँचाये यह प्रश्न उभरता जा रहा है। आज स्वाध्यायपरम्परा, पाठशालापरम्परा तथा जैनत्व की पहचान बनाये रखना दुरूह सा होता जा रहा है। आज वर्णी जी जैसी सहजता, सरलता और निर्मलता का सर्वथा अभाव सा दिखाई दे रहा है। श्रावकों, विद्वानों और श्रमणों के बनते गुट जैनधर्म संस्कृति को कमजोर बना रहे हैं यह भी चिंतनीय है।

वर्णी जी जीवनभर ज्ञान की पूजा करते रहे और दीप से दीप जलाते रहे और छोड़ गये ऐसा प्रकाश स्तम्भ जो कदम-कदम पर राह दिखा रहा है। नयी पीढ़ी को ऐसे बहुआयामी व्यक्तित्व को जानने समझने और सीखने के लिये वर्णी जी द्वारा लिखित 'मेरी जीवन गाथा' अवश्य पढ़ना चाहिये।

पोस्ट बाक्स २०, खतौली (उ.प्र.)

‘उत्तम ब्रह्मचर्य’

प्रो. (डॉ.) विमला जैन, फिरोजाबाद

विश्व के समस्त धर्म ब्रह्मचर्य को पावन और पवित्र धर्म की संज्ञा देते हैं। सामाजिकरूप से भी ब्रह्मचर्य या शील को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है वैयक्तिक लाभ के रूप में स्वस्थ शौर्ययुक्त शरीर तथा मान-सम्मान, यशकीर्ति से समन्वित जीवन एवं आध्यात्मिक उपलब्धि का श्रोत व सुगति प्रदायक कहकर ‘ब्रह्मचर्य’ व्रत को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। वासनाओं पर पूर्णनियंत्रण ‘ब्रह्मचर्य महाव्रत’ या उत्तमब्रह्मचर्य कहलाता है जबकि वासनाओं के केन्द्रीकरण को ब्रह्मचर्याणुव्रत या स्वदारा या स्वपति सन्तोष कहा गया है। भारतीयसंस्कृति में आचार पक्ष का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जैनदर्शन और संस्कृति में भी सम्यक्चारित्र उत्थानपथ का अभिन्न अङ्ग है। दशलक्षण धर्म में उत्तमक्षमा, मार्दव, आर्जव को भाव रूप में लिया गया है जबकि सत्य, शौच, संयम, तप और त्याग को उपाय या कृत-कर्म बताया है। इन मन-वचन-कर्म को ‘कर्तृत्व’ की संज्ञा दी गयी है तथा इसका सार या नवनीत आकिंचन्य तथा ब्रह्मचर्यधर्म को माना है। आरम्भ के उत्तमक्षमा, मार्दव आर्जव तथा शौचधर्म धारण करने पर क्रोध, मान, माया, लोभ ये चार कषायरूप विभाव दूर हो जाते हैं और आत्मा ‘स्वभाव’ में आ जाती है, क्योंकि ‘वत्थु सहावो धम्मो’ और इसके बाद आरम्भ होता है उपाय। उपाय में आत्ममन्थन होने से वाणी में सत्य प्रस्फुटित होता है अतः हित-मित-प्रिय सत्य ध्वनित होने लगता है। संयम से इन्द्रिय-मन विजय के साथ प्राणी मात्र का रक्षण आचरण में आ जाता है और फिर ‘तप’ का ताप दे कर्मों की निर्जरा शुरु हो जाती है, इधर ‘त्याग’ के निश्चयस्वरूप में राग-द्वेष-मोह आदि छूटते हैं तो व्यवहार पक्ष में ‘दान’ देकर सब पर कल्याणार्थ क्रिया शुरु हो जाती है। शौचधर्म से शुचिता और सन्तुष्टि हुई थी ‘त्याग’ से विशुद्धता की वृद्धि हुई परन्तु आकिंचन्य धर्म धारण करते ही ‘न किञ्चनः इति अकिञ्चनः’ के द्वारा मूर्च्छा ममत्व समाप्त हो गया तब जाकर ‘उत्तमब्रह्मचर्य’ से साक्षात्कार होता है और साधक ब्रह्मचर्य की ऊर्जा को ऊर्ध्वमुखी हो ब्रह्मलीनता में लगा देता है दशधर्म का आलोक शुद्धात्म का दर्शन करा देता है। मानव शनैः शनैः मुक्तिपथ की ओर अग्रसर

होता है और अन्तिम चरण ब्रह्मचर्य में परिवर्तित हो शुद्ध-बुद्धब्रह्म में लीनता सिद्ध हो जाती है अनगार धर्मावृत्त में कहा है-

या ब्रह्मणि स्वात्मनि शुद्धबुद्धे चर्या पर द्रव्यमुचः प्रवृत्तिः ।
तद्ब्रह्मचर्यं व्रतसार्वभौमं ये पान्ति ते यान्ति परं प्रमोदम् ॥

४/६० ॥

अर्थात् परद्रव्यों से रहित शुद्ध-बुद्ध अपने ‘आत्मा’ में जो ‘चर्या’ अर्थात् लीनता होती है उसे ब्रह्मचर्य कहते हैं। व्रतों में सर्वश्रेष्ठ इस ब्रह्मचर्य का जो पालन करते हैं वे अतीन्द्रिय आनन्द ‘परमानन्द’ को प्राप्त करते हैं। इस प्रकार आत्मलीनता या ‘ब्रह्मलीन’ होने का नाम ब्रह्मचर्य है। उत्तमब्रह्मचर्य या ब्रह्मचर्य महाव्रत को समस्त व्रतों का सार तथा सर्वश्रेष्ठ कहा है। इसका महत्त्व बताते हुये कहा है।

अंक स्थाने भवेच्छीलं शून्याकारं व्रतादिकम् ।

अंक स्थाने पुनर्नष्टे सर्वं शून्यं व्रतादिकम् ॥

अर्थात् शील को अङ्क के स्थानापन्न माना गया है और व्रतादिक को शून्य के स्थानापन्न माना गया है, इसलिये शील के नष्ट हो जाने पर व्रतादिक निष्फल हो जाते हैं। अङ्क के बिना शून्य निष्प्रयोजन है, वैसे ही शील के बिना मानव के व्रतनियम, ज्ञान-गुण सभी महत्त्वहीन हैं। वास्तव में लोकालोक में शील ही सारभूत है, शील के द्वारा स्व-पर को संकट से उबारा जा सकता है, तीनों लोक पर विजय प्राप्त की जा सकती है। सिद्धत्व की प्राप्ति के लिये ‘शीलव्रत’ का पासपोर्ट अनिवार्य है। ब्रह्मचर्य आत्मज्ञान की कुंजी है आत्मा पर आधारित प्रेम ही वात्सल्य का अमृत है संगतीत है। जब मानव आत्मानुराग से भर जाता है, चराचर के सुख की संसृष्टि चाहता है तो देहासक्ति से ऊपर उठ जाता है जहाँ वासना का विकार अङ्गातीत होता है वहाँ ‘ब्रह्म’ का उदात्त आनन्द, वात्सल्य और उदारता का हितकारी दिव्यस्वरूप दिखाई नहीं दे सकता। जब परिणामों में अत्यन्त निर्मलता आ जाती है तभी मानव धीर, वीर, समर्थ ज्ञानी हो ब्रह्मचर्य को धारण करने में समर्थ होता है। आगम में ‘शीलधर्म’ की परिचर्चा में अठारहहजार भेद बताये हैं तथा सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेचनाकर साधक को

परिपक्व किया है जो जितना बड़ा प्रोजेक्ट होता है, उसका उतना ही सावधानीपूर्वक विश्लेषण करना होता है। धर्म की कसौटी पर खरा उतरने की दशधर्म की अग्नि परीक्षा देनी होती है, खरा तो स्वर्ण अन्यथा राख ही राख है। स्वस्थमानसिकता, इन्द्रियसंयम, कल्याणमित्र का संसर्ग तथा भगवत्भक्ति यह साधना के अङ्ग हैं इनमें कहीं भी कमी होने पर धाराशायी होना अवश्यभावी माना है। पंचेन्द्रिय के विषयों से प्रवृत्ति की निवृत्ति 'नास्ति' है और आत्मलीनता 'अस्ति' है यह उपलब्धि 'ब्रह्मचर्य महाव्रत' के धारण करनेवाले महामुनियों की है परन्तु ब्रह्मचर्याणुव्रत धारी पात्यव्रत का भी महात्म्य कम नहीं है। यथा-

शीलेन प्राप्यते सौरव्यं, शीलेन विमलं यशः।

शीलेन लभ्यते मोक्षः तस्माच्छीलं वरं व्रतम्॥

अर्थात् शील से सुख प्राप्त होता है, शील से निर्मल यश प्राप्त होता है शील से मोक्षलक्ष्मी प्राप्त होती है, इसलिये शीलव्रत श्रेष्ठ है। यही नहीं शील से स्त्रियाँ और पुरुष सुशोभित होते हैं तथा उत्तमगुणों और समस्त सम्पत्तियाँ प्राप्त होती हैं यश और मान देनेवाला शील से श्रेष्ठव्रत कोई दूसरा नहीं है। स्वदारा सन्तोषव्रत के कारण श्रेष्ठी सुदर्शन को शूली से सिंहासन तथा अमरयश की प्राप्ति हुई थी। सीता ने अग्नि की धधकती ज्वाला को शीतल जल का सरोवर बना दिया था। द्रोपदी ने भरी सभा में स्वलज्जा की रक्षाकर महान् योद्धाओं को पराजित कर दिया था। प्रथमानुयोग और भारतीयसंस्कृति के इतिहास में अनगिन दृष्टान्त स्वर्णाक्षरों में देदीप्यमान हो रहे हैं। वैसे भी परिणामों की निर्मलता, शरीर की स्वस्थता, निराकुल ऐन्द्रिकसुख तथा आत्मिकशक्ति के लिये ब्रह्मचर्याणुव्रत चिन्तामणि है। सामाजिक उत्थान तथा सुख-शांति का मूलमंत्र राष्ट्रीयएकता तथा समृद्धता के लिये भी सदाचरण पहली शर्त है।

विवाह संस्कार के बाद धर्म, समाज और संस्कृति की मान्यतानुसार मनुष्य काम पुरुषार्थ करता है, सृष्टिसृजन और वंशपरम्परा को बढ़ाना, दाम्पत्य प्रेम की चरमउत्कृष्टि, सुखसन्तुष्टि, जीवनभर की सुरक्षा यह शीलव्रत धारण करके ही प्राप्त किया जाता है, यदि मानव काम को भोग रसप्रधान, देहासक्ति के रूप में लेता है तो वह व्यभिचार और पाप तो है ही, व्यक्ति, समाज और राष्ट्र को भी पतन के गर्त में डाल देता है। व्यभिचारी भोगेषणा और देहासक्ति में मान-मर्यादा भूल वैयक्तिक सन्ताप में डूब लोकालोक में सुख और यश से वंचित रह परिवार, समाज और राष्ट्र

को नष्ट कर देता है रावण इसका साक्षात् उदाहरण है।

'ब्रह्मचर्य' की चर्चा में नारी को निन्द तथा हेय बताकर भर्त्सना की गयी है-

'संसार में विषबेल नारी, तज गये योगीश्वरा'

तथा

भेतुं शूलमसिं छेतुं, कर्तितुं क्रकचं दृढम्।

नरान् पीडयितुं यंत्रं, वेधसा विहिताः स्त्रियः॥

अर्थात् स्त्रियाँ मनुष्य को वेधने के लिये शूली, काटने के लिये तलवार, कतरने के लिये दृढ़ करोत (आरा) अथवा पेलने के लिये माना यंत्र ही बनाये हैं। इतना कुछ कहने का तात्पर्य यही है कि मानव मन की विषय-वासना इतनी तीव्र है कि देखते ही भड़क उठती है। अग्नि के पास ईंधन रखा हो तो आग बढ़ती ही जायेगी और यदि ईंधन हटा दिया जाय तो आग बुझ जायेगी। पुरुष की यह दुर्बलता है वह या तो नारी के पीछे भागता है या फिर नारी से दूर भागता है परन्तु स्व पर नियंत्रण नहीं रखता। विषय-वासनाओं का दास बनकर दिन-रात नीच व्यभिचारी स्त्रियों का संसर्ग कर जीवन नष्ट करता है या स्व कर्तव्य से पलायन कर नारीत्याग का नाटक करता है। नारी को दैवीरूप प्रदानकर सरस्वती, लक्ष्मी, अन्नपूर्णा, महाकाली, शक्तिदुर्गा का रूप देना भी पुरुष की इस दुर्बलता का प्रतिफल है। ऐसे अनेक दृष्टान्त हैं जब व्यक्ति ने सालों-साल कठिन साधना करके भी स्वयं को वासना के गर्त में गिरा लिया है।

जैनदर्शन और संस्कृति में आचार पक्ष को बढ़ा महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है 'वासनाओं' पर पूर्णनियंत्रण का महाव्रत धारण करना और वासनाओं का केन्द्रीयकरण कर ब्रह्मचर्याणुव्रत का पालन करना दोनों की ही गौरव गाथा का वर्णन किया है अतः कामुकप्रवृत्ति या ऐन्द्रिय विलास को तिलांजलि दे जीवन को सात्त्विक बनाने का पक्ष प्रस्तुत किया है। आज मन को दूषित करनेवाला वातावरण बन गया है। स्थान-स्थान पर अश्लील पोस्टर नग्न-कामुक देहप्रदर्शन, दूरदर्शन समाचार पत्रों में बलात्कार व्यभिचार, अपहरण तथा गिरते हुये चरित्र की घटनाओं को बढ़ा-चढ़ा कर लिखना, स्कूल, कॉलेज तथा अन्यान्य संस्थाओं में भी चरित्र-हनन तथा अपसंस्कृति के प्रचार-प्रसार का बाहुल्य, पत्र-पत्रिका तथा साहित्य में भी 'सत्य कथाओं' के नाम पर व्यभिचार की ही अभिव्यक्ति अधिक द्रष्टव्य है। आदर्श महान् पुरुषों व नारियों के चरित्र को

भी इसतरह प्रस्तुत किया जाता है जिससे उनके साहसिक त्याग-बलिदान को प्रेरणास्पद न दिखाकर निरीह 'मूक पशु की बलि' बना दिया जाता है। युवा पीढ़ी उसे श्रेय और प्रेय न मानकर हेय और त्याज्य मान बैठती है। आज ऐड्स जैसी बीमारी का जो एक मात्र निराकरण या बचाव बताया जाता है वह भी व्यभिचार को बढ़ावा देना जैसा ही है आज इस अपसंस्कृति का सर्वाधिक प्रभाव नारी पर पड़ रहा है आज अपनी मान-मर्यादा को दौव पर लगा भौतिक और कामुकता के प्रवाह में बह रही है आज पात्यव्रत और मातृत्व का पावन रूप देहासक्ति और अज्ञातीत प्रेमाभिव्यक्ति में बदल रहा है। कामुकप्रवृत्ति या ऐन्द्रिकविलास अथवा भोग में भ्रष्टता तो है ही, जीवन और समाज की निःकृष्टता भी है। मानव का मन स्वस्थ बने, समाज में स्वस्थ वातावरण बने, धर्म और राष्ट्र का उत्थान हो इसके लिये ब्रह्मचर्य की उत्कृष्टता को जानना तथा मानना आवश्यक है। मानव पशुत्व से ऊपर उठे, अपने जीवन को धिनौना न बनावे, विषय-वासनाओं की गन्दगी से निवृत्ति तथा घृणा, भ्रम, कलङ्क तथा व्यभिचार से छुटकारा ब्रह्मचर्य की पूर्णता में ही सम्भव है। मानव जीवन की पावन सुगन्ध और दैवीय दिव्यता, सत्यं शिवं सुन्दरं की आनन्दानुभूति 'ब्रह्मचर्य' की

सुरक्षा से ही सम्भव है पात्यव्रत का समर्पितभाव तथा पावन मातृत्व का वात्सल्य, मानव के बाल्य काल की रमणीयता, सर्वाङ्गीण विकास की मुस्कान, यौवन का शौर्य और वीरत्व का बलिदान, प्रौढ़ावस्था का कर्मयोग, ज्ञान-वैराग्य का समन्वय सब कुछ सम्यक्चरित्र पर ही निर्भर है। आत्मा पर आधारित प्रेम-वात्सल्य का अमृत ब्रह्मचर्य के उद्योग से ही मिल सकता है। साकांक्ष प्रेम नाक कटवा कर पतन के कूप में गिराता है जब कि निष्कांक्ष प्रेम-'बसुधैव कुटुम्बकम्' के दिव्यवात्सल्य से सुख-शान्ति का आलोक फैला देता है। धर्म-अर्थ-काम इन तीन पुरुषार्थों का सुखद फल पाकर चरम उत्कृष्ट मोक्षपुरुषार्थ ब्रह्मचर्य से ही सम्भव है-

ब्रह्मणि आत्मनि चरति इति ब्रह्मचर्यम्।

अर्थात् आत्मा में रमण करने (मुक्ति प्राप्ति) के लिये उत्तम ब्रह्मचर्य ही सर्वोत्तम साधन है।

**ब्रह्मचर्य उत्तम फले, सम्यक् कर पुरुषार्थ
लोकालोक के सुख मिले, मानव जन्म सुकार्थ।
धर्म, समाज अरु राष्ट्रहित, शील श्रेय शिवकार
जगत शान्ति समता सुयश, 'विमल' प्रेम भवपार।**

अनर्थों की बिरियाँ

नगर छपारा में पंचकल्याणकमहोत्सव के उपरान्त बण्डा पंचकल्याणक के लिए विहार चल रहा था। नरसिंहपुर से होते हुए करेली की ओर जा रहे थे। इसके पूर्व दिन 28 कि.मी. चलकर नरसिंहपुर आये और अब करेली 16 कि.मी. चलना था। रास्ते में विहार में ही आचार्य श्री विद्यासागर जी से कहा कि महाराज श्री कल 28 कि.मी. चलकर आये थे तो उतना ही समय लगा कि जितना आज 16 कि.मी. चलने में लगा क्योंकि मंदगति से चल रहे थे। आचार्य महाराज ने हँसते हुए कहा- 'भैया बानियों की बारात कित नई बजे निगे अनर्थों की बिरियाँ लौ पाँचई जात।' यह मनोविनोदभरी व शिक्षाप्रद बात को सुनकर सभी लोग हँसने लगे।...

जीवत्व का भान

यह उस समय की बात है जब बड़ी-बड़ी पहाड़ियों के बीच से संघ सहित गुरुदेव विहार करते हुए चले जा रहे थे एक ओर इन पहाड़ों को पार कर रहे थे दूसरी ओर कर्मरूपी पर्वतों को भेदते हुए मोक्षमार्ग पर अविलम्ब कदम बढ़ाये जा रहे थे। बड़े-बड़े पत्थरों को देखकर शिष्य ने कहा- आचार्य श्री देखो ये कितने बड़े-बड़े पत्थर हैं। आचार्य गुरुदेव ने संवेदन भरे स्वर में कहा- ये जीव हैं, ये वृद्धि को प्राप्त होते हैं, इसी कारण से इतने बड़े-बड़े हो गये हैं। पर क्या करें आज का युग पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति में जीव है ऐसा मानता ही नहीं है। इस विज्ञान के युग में सम्यग्ज्ञान का अभाव होता चला जा रहा है। जब तक जीव का भान नहीं होगा, पहचान नहीं होगी, तब तक हम संयम का पालन नहीं कर सकते। जीव की उत्पत्ति के आधार स्थान का सही-सही ज्ञान रखना चाहिए।

मुनि श्री कुंथुसागर संकलित 'संस्मरण' से साभार

प्रज्ञापुरुष, मनोहारी, स्नेहवत्सल, व्यक्तित्व प्रो. प्रफुल्ल कुमार मोदी

अरुण जैन

सदस्य म.प्र. राज्य अल्पसंख्यक आयोग, भोपाल



प्रोफेसर प्रफुल्ल कुमार मोदी मध्यप्रदेश के नरसिंहपुर जिले के ख्यात मोदीवंश के प्रज्ञापुरुष थे, वे श्रीमान् मचल मोदी के पौत्र गांगई रियासत के प्रतिष्ठित श्रेष्ठी बालचंद मोदी के द्वितीय पुत्र डॉ. हीरालाल जैन, जो न केवल

जैन समुदाय वस्त्र प्रदेश, देश ही नहीं अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में सम्मान प्राप्त अध्यापक, शोध अध्यावसायी एवं प्राच्य विद्याचार्य के रूप में विख्यात डॉ.सा. के इकलौते पुत्र प्रोफेसर प्रफुल्ल कुमार मोदी मध्यप्रदेश के दुर्लभ शिक्षक-प्रशासक के रूप में शैक्षणिक जगत में आदर और सम्मान के साथ स्मरण किए जायेंगे।

24 मार्च 1922 को गाडरवारा मध्यप्रदेश के एक दूरस्थ अंचल गांगई-चीचली के मोदीवंश में जन्म लेने के बाद उन्होंने अपनी प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा गाडरवारा एवं नरसिंहपुर में प्राप्त की, तथा 1945 में एम.ए.एल.एल.बी की पढ़ाई किंग एडवर्ड कॉलेज अमरावती में की। पिता डॉ. हीरालाल जी अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिलब्ध प्राच्यविद्याचार्य और संस्कृत के श्रेष्ठ आचार्य थे। मोदी जी की रुचि अर्थशास्त्र में निष्णात होने हेतु विदेश में अध्ययन करने की थी। नागपुर विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र आनर्स में सर्वोच्च अङ्कों से उपाधि मिलने पर वे स्वर्णपदक से विभूषित हुए। उन्हीं दिनों एक घटना घट गई, पिता श्री डॉ. साहब कलकत्ता प्रवास से बहुत खिन्न लौटे थे, खिन्नता का कारण था, उनके परम विद्वान् पुस्तक प्रेमी श्री नाहर की लाइब्रेरी जो कि विशाल सभाभवन में ग्रंथालयीन कायदे से सुसज्जित थी उसकी दुर्दशा को देखकर। वस्तुतः स्व. नाहर के पुत्र जो विलायत से बे-रिट-लॉ करके लौटे थे और पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित अपने मित्रों (देशी-विदेशी) और सहकर्मियों का स्वस्तिभोज घर पर व्यवस्थित करने हेतु पिताजी के पुस्तकालय का विशाल कक्ष उन्होंने बाल डॉस हेतु तथा उनकी सारी अमूल्य पुस्तकों का विशाल संग्रह कबाड़ी को बेचकर, बाल-डॉस का आयोजन किया

था। अपने पिताजी की खिन्नता का उनपर इतना असर हुआ कि उन्होंने विदेश अध्ययन हेतु जाने की योजना ही त्याग दी एवं नागपुर विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम.ए. अध्ययन हेतु दाखिला ले लिया। इससे न केवल डॉ. जैन साहब की अमूल्य लाइब्रेरी सुरक्षित रही अपितु पुत्र की मर्यादा की भी रक्षा हो गई। आज भी सुधीजनों के अध्ययन हेतु डॉ. हीरालाल जैन जी द्वारा स्थापित तथा उनके पुत्र प्रो. प्रफुल्ल कुमार मोदी द्वारा समृद्ध यह ग्रंथालय अपने मूल्यवान् संग्रह के द्वारा ज्ञान-पिपासुओं की सेवा में रत है। अपने यशस्वी पिता डॉ. हीरालाल जैन की विरासत का निर्वाह उन्होंने बड़ी ही कर्मठता और लगनशीलता से किया।

प्रोफेसर पी. के. मोदी ने लम्बे समय तक विदर्भ और मध्यप्रदेश के विभिन्न महाविद्यालयों में अध्यापक और प्रशासक के पद पर अपनी सेवाएँ दी हैं। स्नातकोत्तर महाविद्यालयों के प्राचार्यपद को सुशोभित करते हुए छात्रों को सुसंस्कृत, कर्मचारियों को व्यवस्थित एवं अध्यापकों को अध्यापन और शोधोन्मुख होने की ओर सफलतापूर्वक प्रेरित करते रहे हैं। स्वयं महाविद्यालय सबसे पहले पहुँचते सबके बाद बाहर आते। अपने कार्यकाल के अनुभव के परिप्रेक्ष्य में उन्होंने हमेशा सर्वतोन्मुखी विकास के लिये नये आयाम दिये। तभी तो उनकी नियुक्ति देश के गिने चुने विद्यापीठों में से एक सागर के डॉ. हरिसिंह विश्वविद्यालय के कुलपति पद पर हुई। उनकी यशगंध इतने समय के बाद अब भी अम्लान नहीं हुई है। जीवन मूल्यों को आचरण में प्रतिष्ठित करनेवाले इस दुर्लभ शिक्षक-प्रशासक ने सिद्धांत से समझौता करने की बजाय शीघ्र लाभ पद को तृण-तुषावत् त्यागकर, मर्यादापुरुष के रूप में मोदीवंश की ख्यात और धर्मपुरुष की आचरण-शुद्ध परम्परा को प्रतिष्ठित गरिमा दी। बीसवीं शताब्दी के विद्यान्वितान में एक चमकीले नक्षत्र की तरह उन्होंने अपनी आभा बिखेरी है।

उनका बौद्धिक-चारित्रिक कद उन जैसा ही ऊँचा था, उनके निर्मलमन, स्नेह एवं वात्सल्य के कारण सभी आयु, वर्ग और जीवन स्तर के लोग उनका सम्मान करते थे, उन पर विश्वास करते थे। प्रदेश का शायद ही कोई

ऐसा स्थान होगा जहाँ उनके सम्पर्क में आनेवाला छात्र, अध्यापक, अधिकारी या कर्मचारी उनकी मेधा और सहृदयता की सराहना करते ना थकता हो।

डॉ. हीरालाल जैन ने जैनागम का पाठालोचन, विश्लेषण और हिन्दी अनुवाद कर ऐतिहासिक कार्य किया था। जिनागम के वे श्रेष्ठ विद्वान् थे, उनके गौलोकवासी हो जाने के बाद प्रोफेसर मोदी ने प्राच्यविद्या के जैन और जैनेतर अध्ययन को जारी रखने की भरपूर चेष्टा की। स्वर्गीय पिता डॉ. हीरालाल जी जैन के जन्मशताब्दी समारोह के प्रसङ्ग पर उनके प्रकाशित अप्रकाशित लेखन एवं षट्खंडागम की शास्त्रीय भूमिका के सङ्कलन इत्यादि को सफलतापूर्वक संपादित कराकर अपनी बौद्धिक ऊर्जा का उत्कर्ष प्रमाण दिया। धर्म की चेतना, ज्ञान और आचरण की सौम्यता के वंशसंस्कार उनके व्यक्तित्व में जीवंत थे उनको ना तो अपनी ज्ञानगरिमा का गर्व था और ना ही ज्ञान के विच्छिन्न दीप विशेषा में रह जाने का आग्रह। वे अकेले अपने में ही जीवित रहना हेय समझते थे। सुसंस्कार और धर्मभावना परिलक्षित हुई जब उन्होंने अग्रवाल कॉलोनी जबलपुर स्थित दिगम्बर जैनमंदिर की स्थापना में अपना महत् योगदान दिया। उनके चित्त की यही प्रवृत्ति उन्हें "पार्श्वनाथ चरित" 'करलखन' और सामुद्रिक शास्त्र जैसी उल्लेखनीय कृतियों के अनुवाद की ओर भी ले गयी। इन मनीषी के ज्ञान-वैभव के सम्पर्क में जो भी आया, वह न तो कभी उनके मनोहारी और स्नेहवत्सल व्यक्तित्व को विस्मृत कर पाया और न ही उनके अहंकार शून्य पांडित्य को। उन्होंने जैसे मानवीय करुणा के धर्म और मर्म को अपनी अंतश्चेतना में आत्मसात कर लिया था। ज्ञान की प्राचीन परम्परा से आधुनिककाल तक वे चैतन्य थे चिंतन में ही निमग्न रहे। अपनी वाणी और कृत्यों से कदाचित् ही उन्होंने किसी को दुःख पहुँचाया हो। कर्तव्य और आनंद तथा कर्मठता और सरसता के बीच सहज संतुलन ही उनके सार्थक जीवन की परिकथा थी।

पार्थिव देह नश्वर है, सभी संयोगों का अंत अंततः वियोग में होता है यह पुस्तकीय तत्त्वज्ञान प्रोफेसर प्रफुल्ल

कुमार मोदी जी के चिरविछोह की पीड़ा को म्लान नहीं करेगा। वे जबलपुर के नागरिक जीवन की न केवल एक वरिष्ठ विभूति थे, वरन् शिक्षाजगत् के एक उज्ज्वल प्रकाश स्तम्भ भी केवल अपनी वय के कारण नहीं, अपनी सहज, निश्छल स्नेहशीलता के कारण भी थे।

विगत 30 जून 2007 को प्रज्ञापुरुष प्रोफेसर प्रफुल्ल कुमार मोदी जी 85 वर्ष की परिपक्व आयु प्राप्तकर महाशून्य में लीन हो गए। उनके अवसान से सम्पूर्ण मध्यप्रदेश, महाकौशल में प्राच्य विधाओं और संस्कृति की एक ऐसी आलोकोज्ज्वल परम्परा का अंत हो गया, जो दीर्घकाल से दर्शन, अध्यात्म और श्रमण संस्कृति के विस्तृत आयामों एवं अंधकाराच्छन्न अध्यायों को अपनी सम्पूर्ण शक्ति से उजागर करती रही।

गौरतबल होगा प्रो. मोदी के लिए डॉ. इकबाल साहब के निम्न शेर का उल्लेख करना-

हजारों साल नर्गिस अपनी बेनूरी पे रोती है,

बड़ी मुश्किल से होता है चमन में दीदावर पैदा।

मेरे स्व. मामा जी तथा मोदी जी नागपुर कॉलेज से सहपाठी थे, यह एक तिगड़ी थी, मोदी-गर्ग-मुदालियर किसी एक को ढूँढना हो तो किसी को भी ढूँढ लें, वह मिल जाएगा, इस मित्रता को उन्होंने पारिवारिक बंधन में बदल दिया, और वे हमारे 'मम्मा जी' हो गए, और रिश्ता कायम हो गया, वीर प्रभु से यही कामना है कि यह जन्म जन्मान्तर तक जुड़ा रहे। उसी शाश्वत सौन्दर्यबोध को उनकी सहधर्मणी श्रीमती इंदुमोदी, बहिन डॉ. शान्ता जैन, पुत्री श्रीमती नीरजा सतीश नायक और उनके दोनों पुत्रों, पुत्रवधुओं प्रदीप-मृदुला, सुधीर-सरल मोदी तथा प्रपौत्र आलोक, अंशु अम्बुज मोदी ने भी हृदयंगम किया।

उनके अभाव के कारण अभ्यस्त होने में समय तो लगेगा, किन्तु उनकी प्रेरणादायक स्मृति हमारे मानस पटल पर निरन्तर चंदन गंध भरती रहेगी।

'महसूस कर सकता हूँ पर छू नहीं सकता

तुम फूल नहीं फूल की खूशबू की तरह हो।'

परम पूज्य मम्मा जी के चरणों में शत शत वन्दन-नमन।

दानं प्रियवाक्सहितं ज्ञानमगर्वं क्षमान्वितं शौर्यम्।

वित्तं त्यागनियुक्तं दुर्लभमेतच्चष्टयं लोके॥

मधुर वचन बोलते हुए दान करना, ज्ञान होने पर गर्व न होना, शौर्य होने पर क्षमाभाव धारण करना तथा धन होने पर त्याग करना, ये चार बातें लोक में दुर्लभ हैं।

अहिंसादिवस : भारत का राष्ट्रीयपर्व

डॉ. कपूर चंद जैन

हाल ही में संयुक्त राष्ट्रसंघ ने महात्मा गांधी के जन्मदिवस 2 अक्टूबर को 'अहिंसादिवस' के रूप में घोषित किया है। अब सम्पूर्ण विश्व में प्रतिवर्ष 2 अक्टूबर अहिंसादिवस के रूप में मनाया जायेगा। जैनसमाज के लिए यह अत्यन्त गौरव का विषय है क्योंकि सम्पूर्ण विश्व में जैनधर्म/दर्शन की पहचान अहिंसादर्शन के रूप में की जाती है एक प्रकार से जैनधर्म/दर्शन और अहिंसा पर्यायवाची से हो गये हैं। महात्मा गांधी ने आधुनिकयुग में अहिंसा और सत्य के ऐसे-ऐसे प्रयोग किये जो अनूठे हैं। गांधी जी के जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि अहिंसक क्रान्ति के द्वारा भारतवर्ष को आजादी दिलाना है।

गांधी जी को अहिंसक संस्कृति बचपन से ही मिली, उनके घर जैनसाधुओं का आवागमन प्रायः होता रहता था। जैनधर्मानुयायियों से भी उनका निकट का सम्पर्क था। गांधी जी जब अध्ययनार्थ विदेश जाने लगे और उनकी माता ने उन्हें इस भय से भेजने में आना-काना की, कि विदेश में जाकर यह मांस-मदिरा भक्षण करेगा, तब जैन मुनि बेचरजी स्वामी ने उन्हें मांसादि सेवन न करने की प्रतिज्ञा दिलाई थी। स्वयं गांधी जी ने अपनी आत्मकथा 'सत्य के प्रयोग' में लिखा है- बेचर जी स्वामी मोढ बनियों में से बने हुए एक जैनसाधु थे.... उन्होंने मदद की। वे बोले- मैं इस लड़के से उन तीन चीजों के व्रत लिवाऊँगा। फिर इसे जाने देने में कोई हानि नहीं होगी। उन्होंने प्रतिज्ञा लिवाई और मैंने मांस, मदिरा तथा स्त्री संग से दूर रहने की प्रतिज्ञा की। माता जी ने आज्ञा दी। (पृ.३२)

इसीप्रकार गांधी जी के जीवन में प्रसिद्ध आध्यात्मिक जैनसंत श्रीमद् रायचन्द्र का गहरा प्रभाव था। जब दक्षिण अफ्रीका में गांधी जी को हिन्दुधर्म पर अनेक शंकायें हुईं और उनकी आस्था डिगने लगी तब अपनी लगभग ३३ शंकाएँ गांधी जी ने रायचन्द्र जी को भेजीं। रायचन्द्र जी ने उनके जो उत्तर दिये उनसे गांधी जी की सत्य और अहिंसा में दृढ़ आस्था हो गई। गांधी जी ने उन्हें अपने गुरु के रूप में स्मरण किया है और अनेक बार उनके ज्ञान की प्रशंसा की है। उन्होंने अपनी आत्मकथा में लिखा है- मेरे जीवन पर गहरा प्रभाव डालनेवाले आधुनिक पुरुष तीन हैं। रायचन्द्र भाई ने अपने सजीव सम्पर्क से, टॉलस्टाय

ने 'बैकुण्ठ तेरे हृदय में' नामक अपनी पुस्तक से और रस्किन ने 'अन्दु दिस लास्ट'- (सर्वोदय) नामक पुस्तक से मुझे चकित कर दिया। (पृ. ७६)। 'श्रीमद् राजचन्द्र' पुस्तक की प्रस्तावना गांधी जी ने लिखी है। गांधी जी ने जिस अहिंसक युद्ध के बल पर देश को आजादी दिलाई उसका मूल भरत और बाहुबली के युद्ध में देखा जा सकता है।

२ अक्टूबर को अहिंसादिवस मनाने का प्रस्ताव जैनसमाज ने नहीं अपितु भारतसरकार ने भेजा यह भी एक महती उपलब्धि है। साथ ही संयुक्तराष्ट्र महासंघ द्वारा इस प्रस्ताव को बिना मतदान के ही अपना लेना भी महत्त्वपूर्ण है। ध्यातव्य है कि भारत के तीन ही राष्ट्रीय पर्व हैं। स्वतंत्रतादिवस (१५ अगस्त), गणतंत्रदिवस (२६ जनवरी) और गांधी जयन्ती (२ अक्टूबर), इसप्रकार अहिंसादिवस भारत का राष्ट्रीयपर्व हो गया है।

अहिंसा एक ऐसा भाव/कर्म अस्त्र है, जिसके लिए कोई दिन, घड़ी, घण्टा, मिनट निर्धारित नहीं किया जा सकता। यह तो सदा रहनेवाला भाव है। फिर भी हम अहिंसादिवस पर अपने वर्षभर के हिंसक/अहिंसक भावों का लेखा-जोखा कर सकते हैं। अन्य लोगों को अहिंसक बनने की प्रेरणा दे सकते हैं। इस आलोक में आगामी अहिंसादिवस पर निम्न कार्य किये जा सकते हैं/ किये जाने चाहिए।

- २ अक्टूबर को 'अहिंसा' विषय पर गोष्ठी आयोजित करें।
- सम्भव हो तो अहिंसा रैली निकालें।
- रात्रि में लघुनाटक, कवि सम्मेलन आदि का आयोजन करें।
- महिला संगठन 'महिलाएँ घर और भोजनशाला में कैसे अहिंसक बनें' विषय पर भाषण प्रतियोगिता आदि रख सकते हैं।
- अहिंसादिवस के शुभकामना पत्र अपने सम्बन्धियों/ मित्रों/अन्य उपर्युक्त महानुभावों को भेजें।
- मोबाइल पर निम्न तरह के एस.एम.एस. भेजें।
- अहिंसादिवस पर अपने स्वभाव का चिन्तन करें।
- अहिंसादिवस पर कम से कम एक व्यक्ति को

- अहिंसक बनायें।
- अहिंसादिवस पर अपने सबसे प्रिय मित्र से अहिंसा के सन्दर्भ में चर्चा करें।
- अहिंसादिवस पर किसी अन्धे को सड़क पार करायें।
- अहिंसादिवस पर जीवों के प्रति दया व करुणा का भाव रखें।
- जिसे आपने कष्ट पहुँचाया हो आज उसके कष्टों को दूर करने के सन्दर्भ में चिन्तन करें।

- हम अहिंसक बनें, आइये अहिंसा के सन्दर्भ में चिन्तन करें।
- मैं अहिंसक हूँ आप भी बनें। आदि।
आइये! पहले विश्व अहिंसादिवस को हम जोर-शोर से मनायें।

रीडर एवं अध्यक्ष संस्कृत विभाग
श्री कुन्दकुन्द जैन पी.जी. कॉलेज
खतौली (उ.प्र.)

शाहपुर (सागर म.प्र.) में मुनि चातुर्मास

शाहपुर जिला सागर में आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के आज्ञानुवर्ती शिष्य-मुनि श्री 108 क्षमासागर जी, मुनि श्री भव्यसागर जी, मुनि श्री अभयसागर जी एवं मुनि श्री श्रेयांससागर जी महाराज का पावन चातुर्मास हो रहा है। इस पावन अवसर पर श्रद्धालुओं की अधिकता के कारण सुविधा हेतु रेलविभाग ने दो सुपरफास्ट ट्रेनों का स्टॉपेज रेलवेस्टेशन गनेशगंज (कटनी-बीना रेलवेस्टेशन के मध्य) पर करने का त्वरित निर्णय लिया है। यह दो ट्रेनें हैं- 1. दयोदय एक्सप्रेस (2181 एवं 2182)। यह ट्रेन जबलपुर की ओर प्रातः 5:30 बजे एवं जयपुर की ओर रात्रि 11:55 बजे गनेशगंज स्टेशन से रवाना होगी।

2. कामायनी एक्सप्रेस (1071 एवं 1072)। यह ट्रेन बनारस से कुर्ला (मुम्बई) तक चलती है। यह ट्रेन बीना की ओर रात्रि 3:40 बजे एवं कटनी की ओर प्रातः 7:15 बजे गनेशगंज स्टेशन से रवाना होगी।

शाहपुर (रेलवेस्टेशन गनेशगंज) के समीप लगभग 65 किलोमीटर दूर आचार्य 108 श्री विद्यासागर जी महाराज का ससंध चातुर्मास बीना बारहा (देवरी) में हो रहा है। शाहपुर से लगभग 55 किलोमीटर दूर सिद्धक्षेत्र नैनागिर जी (बण्डा), 17 किलोमीटर दूर अतिशयक्षेत्र पटेरिया जी (गढ़ाकोटा) एवं 80 किलोमीटर दूर सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर (दमोह) स्थित है। शाहपुर, सागर मुख्यालय से लगभग 30 किलोमीटर दूर स्थित है।

पावन वर्षायोग चातुर्मास समिति द्वारा समस्त अतिथियों के रेलवेस्टेशन गनेशगंज से शाहपुर आने के लिए वाहन व्यवस्था की गयी है। चातुर्मास समिति समस्त श्रद्धालुओं से विनम्र अनुरोध करती है कि गनेशगंज रेलवेस्टेशन तक रिजर्वेशन (आरक्षण) कराकर आवें।

अध्यक्ष - चातुर्मास समिति
शाहपुर (सागर) म.प्र.

प्रश्नकर्ता- कु. बीना गोधा जयपुर

जिज्ञासा- परमाणु में चार स्पर्श के बजाय दो स्पर्श ही क्यों पाये जाते हैं?

समाधान- पुद्गल के २० गुण हैं। पांच रूप, पांच रस, दो गंध, ८ स्पर्श। इनमें से एक परमाणु में एकरूप, एकरस, एकगंध और दो प्रकार का स्पर्श ही पाया जाता है। स्पर्श के आठ भेद हैं हल्का-भारी, रूखा-चिकना, कड़ा-नरम, ठंडा-गरम। इनमें से दो या दो से ज्यादा परमाणुओं के मिलने से जो स्कंध बनता है उसमें ४ स्पर्श पाये जाते हैं, अर्थात् हल्का-भारी में से एक, कड़ा-नरम में से एक, रूखा-चिकना में से एक तथा ठंडा-गरम में से एक। परंतु परमाणु में रूखा-चिकना में से एक तथा ठंडा-गरम में से एक, कुल दो स्पर्श ही पाये जाते हैं। इसका कारण यह है कि हल्का-भारी तथा कड़ा-नरम ये ४ गुण व्यंजन पर्याय न होकर द्रव्य की पर्याय हैं। इनका संबंध स्कंध के ही साथ है, परमाणु के साथ नहीं। जैसा कि

१. राजवार्तिककार ने तत्त्वार्थसूत्र ५/२५ की टीका में कहा है-

एक रसवर्णगन्धोऽणुः -- ॥ १३ ॥ द्विस्पर्शो --- ॥ १४ ॥
--- कौ पुनः द्वौ स्पर्शौ । शीतोष्णस्पर्शयोरन्यतरः
स्निग्धरूक्षयोरन्यतरश्च । एकप्रदेशत्वाद्विरोधिनोः युगपदन
वस्थानम् । गुरुलघुमृदुकठिनस्पर्शानां परमाणुष्वभावः
स्कन्धविषयत्वात् ।

अर्थ- परमाणु में एक रस, एक गंध और एक वर्ण है। १३। दो स्पर्श। कौन से दो स्पर्श? शीत-उष्ण में से कोई एक तथा स्निग्ध-रूक्ष में से कोई एक। एक प्रदेश वाला होने से विरोधी स्पर्श युगपत् नहीं पाये जाते। गुरु लघु, और मृदु व कठिन स्पर्श परमाणु में नहीं पाये जाते, क्योंकि वे स्कंध के विषय हैं।

भावार्थ- परमाणु में एक रूप, एक रस, एक गंध तथा दो स्पर्श पाये जाते हैं।

२. श्री हरिवंश पुराण सर्ग-७/३३ में इस प्रकार कहा है-

एकदैकं रसं वर्णं गंधं स्पर्शावबाधकौ ।

दधत् स वर्ततेऽभेदः शब्द हेतुरशब्दकः ॥ ३ ॥

अर्थ- वह परमाणु एक काल में एक रस, एक वर्ण, एक गन्ध, और परस्पर में बाधा नहीं करनेवाले दो स्पर्शों को धारण करता है। अभेद है, शब्द का कारण है

और स्वयं शब्द से रहित है।

३. श्री आदिपुराण २४/१४८ में इस प्रकार कहा है-
अणवकार्यं लिङ्गाः स्युः द्विस्पर्शाः परिमण्डलाः ।

एकवर्णरसा नित्याः स्फुरनित्याश्च पर्ययः ॥ १४८ ॥

अर्थ- परमाणु अत्यंत सूक्ष्म होते हैं, वे इन्द्रियों से नहीं जाने जाते। घट-पट आदि परमाणुओं के कार्य हैं उन्हीं से उनका अनुमान किया जाता है। उनमें कोई भी दो अविरुद्ध स्पर्श होते हैं, एक वर्ण, एक रस, एक गन्ध रहता है। वे परमाणु गोल और नित्य होते हैं तथा पर्यायों की अपेक्षा अनित्य भी होते हैं ॥ १४८ ॥

उपर्युक्त आगम प्रमाणों के अनुसार पुद्गल के स्कंध में चार स्पर्श पाये जाते हैं, जबकि परमाणु में रूखा-चिकना में से एक तथा ठंडा-गरम में से एक, कुल दो ही स्पर्श पाये जाते हैं।

प्रश्नकर्ता- पं. देवेन्द्र कुमार शास्त्री सागर

जिज्ञासा- परिहारविशुद्धि चारित्र छठें तथा सातवें गुणस्थान में ही क्यों पाया जाता है? क्या आठवें आदि गुणस्थानों में इसकी सत्ता नहीं रहती?

समाधान- आपकी जिज्ञासा के समाधान में श्री धवला पुस्तक एक पृष्ठ ३७५-३७६ में इस प्रकार कहा है-

प्रश्न- ऊपर के आठवें आदि गुणस्थानों में यह परिहारविशुद्धि संयम क्यों नहीं होता?

उत्तर- नहीं, क्योंकि जिनकी आत्मायें ध्यानरूपी सागर में निमग्न हैं, जो वचन यम (मौन) का पालन करते हैं और जिन्होंने आने जाने रूप संपूर्ण शरीर संबंधी व्यापार संकुचित कर लिया है, ऐसे जीवों के शुभाशुभ क्रियाओं का परिहार बन ही नहीं सकता है। क्योंकि, गमनागमनरूप क्रियाओं में प्रवृत्ति करनेवाला ही परिहार कर सकता है, प्रवृत्ति करनेवाला नहीं। इसलिए ऊपर के ८वें आदि गुणस्थानों में परिहारविशुद्धि संयम नहीं बन सकता है।

प्रश्न- परिहारऋद्धि की ८वें आदि गुणस्थानों में भी सत्ता पाई जाती है, अतएव वहाँ पर इस संयम का सद्भाव मान लेना चाहिए।

उत्तर- नहीं, क्योंकि ८वें आदि गुणस्थानों में परिहार ऋद्धि पायी जाती है, परंतु वहाँ पर परिहार करनेरूप कार्य नहीं पाया जाता, इसलिये ८ वें आदि गुणस्थानों में इस संयम का अभाव है।

उपर्युक्त प्रमाण के अनुसार सप्तम गुणस्थान से ऊपर

गमनागमनरूप क्रिया न होने से परिहारविशुद्धि चारित्र तो नहीं पाया जाता, परिहारऋद्धि की सत्ता तो पायी जाती है।

जिज्ञासा- अङ्गबाह्य तथा अङ्गप्रविष्ट का क्या स्वरूप है और इसके कितने भेद हैं?

समाधान- अङ्गबाह्य और अङ्गप्रविष्ट के संबंध में आचार्यों का कथन दो प्रकार से पाया जाता है। श्री धवलाकर तथा जीवकाण्डकार का मत अलग है जबकि तत्त्वार्थसूत्र और उसकी टीकाओं में भिन्न मत पाया जाता है। सर्वप्रथम तत्त्वार्थसूत्र और उसकी टीकाओं के आधार से लिखते हैं।

१. तत्त्वार्थसूत्र १/२० में इस प्रकार कहा है-

‘श्रुतं मतिपूर्वं द्वयनेकद्वादशभेदं’

अर्थ- श्रुतज्ञान मतिज्ञानपूर्वक होता है उसके दो भेद हैं अङ्गबाह्य अनेक प्रकार का है और अङ्गप्रविष्ट १२ प्रकार का है। इस सूत्र को स्पष्ट करते हुए श्री राजवार्तिक में कहा गया है कि श्रुत अर्थ के ज्ञाता गणधर देव के शिष्य-प्रशिष्यों के द्वारा कालदोष से अल्पआयु और अल्प बुद्धिवाले प्राणियों के अनुग्रह के लिये अङ्गों के आधार से रचे गये संक्षिप्त ग्रंथ अङ्गबाह्य हैं तथा भगवान् अरहंत सर्वज्ञदेवरूपी हिमाचल से निकली हुई वचनरूपी गङ्गा के अर्थरूपी निर्मलजल से प्रक्षालित है अंतरकरण जिनका, ऐसे बुद्धि आदि ऋद्धि के धनी गणधरों के द्वारा ग्रंथरूप से रचित आचारादि १२ अङ्गों को अङ्गप्रविष्ट कहते हैं जैसे- आचाराङ्ग, सूत्रकृताङ्ग आदि।

भावार्थ- तत्त्वार्थसूत्र की परम्परा में अङ्गप्रविष्ट गणधरदेव के द्वारा कथित तथा उसके आचाराङ्गादि १२ भेद हैं जबकि अङ्गबाह्य की रचना भारतीय आचार्यों के द्वारा की जाती है और वह अनेक प्रकार का है। जैसे- समयसार, द्रव्यसंग्रह आदि।

अब श्री धवला/ जीवकाण्ड के कथन का उल्लेख किया जाता है-

जीवकाण्ड गाथा ३४९ के अनुसार ग्रंथरूप श्रुतज्ञान के (अङ्गप्रविष्ट के) आचाराङ्गादि १२ तथा अङ्गबाह्य के सामायिकादि १४ भेद हैं। सामायिक, चतुर्विंश-स्तव, वंदना, प्रतिक्रमण, वैनयिक, कृतिकर्म, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, कल्पव्यवहार, कल्पाकल्प्य, महाकल्प, पुण्डरीक, महापुण्डरीक, निषिद्धिका।

उपर्युक्त के अनुसार अङ्गप्रविष्ट के आचाराङ्गादि १२ भेद हैं और अङ्गबाह्य सामायिकादि १४ भेद है तथा दोनों के कर्ता गणधरदेव ही हैं।

उपर्युक्त दोनों मतों को दृष्टि में रखने से यह स्पष्ट

होता है कि अङ्गप्रविष्ट के भेद और कर्ता के संबंध में सभी आचार्य एक मत है अर्थात् अङ्गप्रविष्ट के आचाराङ्गादि १२ भेद हैं और इनके कर्ता स्वयं गणधरदेव ही हैं जबकि अङ्गबाह्य के संबंध में तत्त्वार्थसूत्र की परम्परा के अनुसार इसके अनेक भेद होते हैं और इसकी कर्ता आरातीय आचार्य परम्परा है और जीवकाण्ड के अनुसार अङ्गबाह्य के १४ भेद होते हैं और इनकी रचना स्वयं गणधर देव द्वारा की जाती है।

प्रश्नकर्ता- श्रीमती शांतिकुमारी ‘नागपुर’

जिज्ञासा- मंखलि गोशालक का जीवन वृत्तान्त बताइयेगा?

समाधान- भगवान् वर्धमान के समय में ६ अन्य प्रभावशाली धर्मनायक और भी थे जिन्होंने अपने-अपने नवीन पंथों की स्थापना की थी अथवा जो प्राचीन मतों के नेता बन गये थे। उनके नाम इस प्रकार थे, पूर्णकाश्यप, मंखलिगोशालक, अजितकेशकम्बल, प्रबुद्धकल्यायन, संजयवेलटिठपुत्र, तथा गौतमबुद्ध। ये सभी अपने को तीर्थङ्कर कहते थे। इनका विशेष विवरण तो नहीं मिलता परंतु यहाँ मंखलिगोशालक का जीवनवृत्तान्त ‘भावसंग्रह’ के आधार से लिखा जाता है।

मंखलिगोशालक भगवान् पार्श्वनाथ परम्परा के मुनि थे। जब भगवान् वर्धमान का प्रथम समवशरण लगा तब गोशालक उसमें उपस्थित थे। वे अष्टाङ्गनिमित्तों तथा ११ अङ्गों के धारी थे। उनकी इच्छा गणधर बनने की थी, परंतु जब भगवान् की दिव्यध्वनि उनकी उपस्थिति होने पर भी नहीं हुई तब वे रुष्ट होकर वहाँ से चले गये। वे पृथक् होकर श्रावस्ती में पहुँचे और वहाँ आजीवक संग्रदाय के नेता बन गये वे अपने आपको तीर्थङ्कर कहने लगे और विपरीत उपदेश देने लगे। उनका मत था कि ज्ञान से मुक्ति नहीं होती, अज्ञान से मुक्ति होती है। देव या भगवान् कोई नहीं है अतः शून्य का ध्यान करना चाहिये।

श्वेताम्बरशास्त्रों में इनका चरित्र अन्यप्रकार से मिलता है। उनके अनुसार ये वही गोशालक हैं, जिन्होंने भगवान् महावीर पर तेजो लेश्या छोड़ी थी, जो वापस लौटकर उन्हीं के शरीर में प्रविष्ट हो गयी, जिसके कारण कुछ ही दिनों में उसकी मृत्यु हो गयी थी।

जिज्ञासा- शुभोपयोग के अभाव में शुद्धोपयोग तथा शुद्धोपयोग से केवलज्ञान होता है। यह कार्य-कारण व्यवस्था सही है या नहीं?

समाधान- मोक्षमार्ग-प्रकाशक (अधिकार-७) में इस प्रकार कहा है कि पहले अशुभोपयोग छूट शुभोपयोग

होता है। पीछे शुभोपयोग छूट शुद्धोपयोग होता है और शुद्धोपयोग से केवलज्ञान होता है। इस ग्रंथ में यह भी लिखा है कि शुभोपयोग, शुद्धोपयोग का कारण नहीं है। तत्त्वतः विचार किया जावे तो कारण-कार्य व्यवस्था अपेक्षा उपर्युक्त प्रकार मानना आगमसम्मत नहीं है। इस पर ही विचार किया जाता है।

प्रमेय-रत्नमाला १/१३ में लिखा है कि-

यद्भावाभावाभ्यां यस्योत्पत्त्यनुत्पत्तौ तत्कारणमिति।

अर्थ- जिसके होने पर ही होता है और जिसके न होने पर नहीं होता, वह उसका कारण होता है, ऐसा न्याय है।

उपर्युक्त दोनों परिभाषाओं के अनुसार यह स्पष्ट होता है कि शुभोपयोग के सद्भाव में ही शुद्धोपयोग की उत्पत्ति होती है और शुभोपयोग के अभाव में शुद्धोपयोग की उत्पत्ति नहीं होती। अतः शुभोपयोग शुद्धोपयोग में कारण है (प्रथम परिभाषा अनुसार) तथा दूसरी परिभाषा के अनुसार, शुद्धोपयोग, शुभोपयोग होने पर ही होता है, और

जब तक शुभोपयोग रहता है, तब तक नहीं होता। अतः शुभोपयोग को शुद्धोपयोग का कारण कहना उचित है।

यदि पं. टोडरमल जी के कथन को ध्यान से देखा जाये, तो उन्होंने अशुभोपयोग के छूटने से शुभोपयोग तथा शुभोपयोग के छूटने से शुद्धोपयोग माना है, तो उनको ऐसा नहीं लिखना चाहिए था, कि शुद्धोपयोग से केवलज्ञान होता है। उनको ऐसा लिखना चाहिये था कि शुद्धोपयोग के छूटने से केवलज्ञान होता है, क्योंकि शुद्धोपयोग मात्र १२वें गुणस्थान तक माना गया है। यहाँ तक अर्थात् १२वें गुणस्थान तक केवलज्ञान नहीं होता और केवलज्ञान होने पर शुद्धोपयोग नहीं रहता, बल्कि केवलज्ञान शुद्धोपयोग का फल होता है। अतः सही मान्यता या कारण-कार्य व्यवस्था में तो ऐसी स्थिति होती है कि शुभोपयोग से शुद्धोपयोग और शुद्धोपयोग से केवलज्ञान होता है।

यही मान्यता उपर्युक्त प्रमाणों के अनुसार आगम सम्मत है।

1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी, आगरा (उ.प्र.)

भगवान् नेमिनाथ

जम्बूद्वीप संबंधी भरतक्षेत्र के कुशार्थ देश में शौर्यपुर (द्वारावती) नगरी के हरिवंश शिखामणि राजा समुद्रविजय थे। शिवदेवी उनकी महारानी थी। उस महारानी ने श्रावण शुक्ला षष्ठी के दिन चित्रा नक्षत्र में जयन्त विमानवासी अहमिन्द्र को तीर्थङ्कर सुत के रूप में जन्म दिया। भगवान् नेमिनाथ की तीर्थपरम्परा के बाद पाँचलाख वर्ष बीत जाने पर नेमिनाथ भगवान् का जन्म हुआ था। उनकी आयु भी इसी अन्तराल में शामिल थी। उनकी आयु एकहजार वर्ष तथा शरीर की ऊँचाई दस धनुष थी। इनके विवाह की तैयारियाँ हुईं। बारात जाते समय बाड़े में घिरे आकुल व्याकुल पशुओं की दीन-दशा देखकर इन्हें संसार से वैराग्य हो गया। इससे वे राजीमती के साथ विवाह न करके विरक्त हो गये और बारात लौट गयी। तदनन्तर श्रावण शुक्ला षष्ठी के दिन गिरनार के सहस्राभ्र वन में बेला का नियम लेकर सायंकाल कुमारकाल के तीन सौ वर्ष बीत जाने पर नेमिनाथ स्वामी एकहजार राजाओं के साथ दीक्षित हो गये। राजीमति भी विरक्त होकर दीक्षित हो गई। पारणा के दिन द्वारावती नगरी में सुवर्ण के समान कान्तिवाले राजा वरदत्त ने इन्हें आहारदान देकर पञ्चाश्चर्य प्राप्त

किये। तपस्या करते हुए छद्मस्थ अवस्था के छप्पन दिन बीत जाने पर वे मुनिराज रैवतक पर्वत पर बेला का नियम लेकर महावेणु (बड़े बाँस) वृक्ष के नीचे ध्यान में लीन हुए। वहाँ आश्विन शुक्ला प्रतिपदा के दिन प्रातःकाल के समय घातिया कर्मों के क्षय से इन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया। भगवान् के समवशरण की रचना हुई जिसमें अठारह हजार मुनि, चालीस हजार आर्यिकायें, एकलाख श्रावक, तीनलाख श्राविकायें, असंख्यात देव-देवियाँ और संख्यात तिर्यञ्च थे। भव्य जीवों को धर्मोपदेश देते हुए भगवान् ने छः सौ नित्यानवे वर्ष, नौ मास, चार दिन विहार किया। तत्पश्चात् पाँच सौ तैंतीस मुनियों के साथ एकमास का योगनिरोध कर उसी गिरनार पर्वत से आषाढ़ शुक्ल सप्तमी के दिन रात्रि के आरम्भक काल में ही अघातिया कर्मों का क्षयकर मोक्ष प्राप्त किया। इन्द्र ने गिरनार पर्वत पर वज्र से उकेरकर पवित्र सिद्धशिला का निर्माण किया और उस पर जिनेन्द्रभगवान् के लक्षण अंकित किये।

मुनि श्री समतासागरकृत
'शलाका पुरुष' से साभार

समाचार

श्री विवेकानन्द जैन को वीगाश्वरी पुरस्कार

2007

केन्द्रीय ग्रंथालय, काशी हिन्दू वि.वि. में कार्यरत युवामनीषी श्री विवेकानन्द जैन सहायकग्रंथालयी को वर्ष 2007 का वागीश्वरी पुरस्कार श्री दिगम्बरजैन अतिशयक्षेत्र श्री महावीर जी (राजस्थान) में प्रदान किया गया।

यह पुरस्कार नेशनल नॉन वायलेंस यूनिटी फाउण्डेशन ट्रस्ट, उज्जैन द्वारा प्रत्येक वर्ष युवामनीषी को प्रदान किया जाता है। डॉ. सविता जैन (उज्जैन) इस फाउण्डेशन की महामंत्री, श्री चंद्रप्रकाश पाण्डेय (रतलाम) अध्यक्ष तथा श्री महेन्द्र जैन (कोटा) उपाध्यक्ष हैं।

प्रो. कमलेश कुमार जैन
जैनदर्शन विभाग काशी हिन्दू
विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ. पंकज की पुस्तक चयनित एवं प्रकाशित

विदिशा- इस वर्ष माध्यमिक शिक्षा मंडल मध्यप्रदेश द्वारा कक्षा 11 का पाठ्यक्रम पूर्णतः संशोधित किया गया है, संशोधित पाठ्यक्रमानुसार वाणिज्य-संकाय के अंतर्गत कक्षा 11 की व्यावसायिक अर्थशास्त्र विषय पर नगर के युवा प्राध्यापक एवं सामाजिक कार्यकर्ता डॉ. पंकज जैन द्वारा लिखित पुस्तक को मध्यप्रदेश शासन द्वारा चयनित कर मध्यप्रदेश पाठ्यपुस्तक निगम द्वारा प्रकाशित किया गया है। इसका सम्पूर्ण मध्यप्रदेश में कक्षा 11 के छात्रों द्वारा पाठ्यपुस्तक के रूप में अध्ययन किया जा रहा है।

डॉ. पंकज जैन जो स्वयं एम.कॉम., एम.ए., एम.फिल., एवं पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त हैं। स्थानीय सेन्ट मेरी कॉलेज में वाणिज्य-विभाग के विभागाध्यक्ष के पद पर कार्यरत हैं। साथ ही वे नगर एवं नगर के बाहर की विभिन्न शिक्षणसंस्थाओं में विषय विशेषज्ञ, केरियर परामर्श, एवं व्यक्तित्व विकास पर छात्रों हेतु समय-समय पर मार्गदर्शन विगत कई वर्षों से प्रदान करते आ रहे हैं। डॉ. जैन ने बताया कि इस वर्ष बी.कॉम. प्रथम एवं बी.कॉम. द्वितीयवर्ष के छात्रों हेतु भी प्रश्नोत्तर के रूप में उनकी पुस्तकें शीघ्र ही उपलब्ध होंगी। जिनका प्रकाशन कार्य प्रतिष्ठित प्रकाशक द्वारा किया जा रहा है।

सम्भवतः यह प्रथम अवसर है जब विदिशानगर के किसी प्राध्यापक की पुस्तक प्रदेशस्तर पर पाठ्यपुस्तक के रूप में शासन द्वारा प्रकाशित की गई है। डॉ. पंकज जैन

अध्यापन कार्य के साथ ही सामाजिक कार्य में भी सक्रिय हैं। वे श्री दिगम्बरजैन शीतल विहार न्यास एवं सकल दिगम्बरजैन समाज समिति के मंत्री के साथ ही कई सामाजिक संस्थाओं से जुड़े हुए हैं। डॉ. पंकज प्रसिद्ध जैन विद्वान् पं. सागरमल जैन के पुत्र हैं।

डॉ. पंकज जैन

जैन विकलांग बंधुओं का सर्वेक्षण

कारंजा (लाड)- जैन विद्यार्थी एवं विकलांग (अपंग) बंधुओं के सर्वाङ्गीण विकास हेतु कार्यरत संस्था श्री जैन धर्मीय विद्यार्थी एवं विकलांग सेवा समिति कारंजा (लाड) द्वारा संपूर्ण भारतवर्ष में जैनधर्मीय विकलांग बंधुओं का सर्वेक्षण किया जा रहा है। इस सर्वेक्षण हेतु समिति द्वारा एक आवेदन-पत्र निर्धारित किया गया है, जो विकलांग बंधुओं की सम्पूर्ण जानकारी हेतु प्रकाशित किया गया है।

अतः सम्पूर्ण भारतवर्ष के विकलांग बंधुओं से निवेदन है कि आप अपना संपूर्ण परिचय समिति द्वारा प्रकाशित आवेदन-पत्र बुलवाने हेतु रु.5 (पांच) मूल्य का डाक टिकट लगाकर लिफाफा निम्नलिखित पते पर भेजें।

संपर्क हेतु- श्री धनंजय मोतीलाल राऊळ (जैन), अध्यक्ष श्री जैनधर्मीय विद्यार्थी एवं विकलांग सेवा समिति शनीमंदिर रोड, नेवीपुरा कारंजा (लाड) जि.-वाशिम (महा.)

सम्मदशिखर का विकास सब मिलकर करें

मुनि श्री प्रमाणसागर जी

रिमझिम बारिश के बीच दिगम्बरजैन शाश्वत विहार के एक प्रभाग नीहारिका की आधारशिला की पूजा-अर्चना का दिव्यकार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। पं. ऋषभ जैन ने मंत्रोच्चारण किये। सर्वप्रथम शाश्वत तीर्थराज सम्मदशिखर ट्रस्ट के अध्यक्ष श्री एन.के. सेठी ने सिद्धोमल चैरिटेबिल ट्रस्ट के मैनेजिंग ट्रस्टी श्री देवेन्द्र कुमार जैन व उनकी धर्मपत्नी श्रीमती नवीन सेठी का तिलक व माल्यार्पण द्वारा स्वागत किया तत्पश्चात् पूजा-अर्चा विधि प्रारम्भ हुई। देव-शास्त्र-गुरु व पंचपरमेष्ठी की डेढ़ घंटे की पूजा व अन्य मंत्रोच्चार करते हुए श्री देवेन्द्र कुमार जैन व उनकी पत्नी श्रीमती नवीन जैन ने नीहारिका की गत 28 जुलाई को आधारशीला रखी।

ट्रस्ट के अध्यक्ष एन.के.सेठी महामंत्री श्री किशोर जैन, कोषाध्यक्ष सुभाष जैन, मंत्री छीतरमल पाटनी, योगेश

जैन, धनपाल सिंह जैन, सुरेन्द्रपाल जैन, विजय जैन, जवाहर जैन, जीवेन्द्र जैन, राजकुमार जैन, श्री कमल रामपुरिया, महावीर प्रसाद सेठी तथा अनेक प्रदेशों से आये गणमान्य व्यक्तियों ने पूजा-अर्चा में भाग लिया।

इस अवसर पर आयोजित धर्मसभा में मुनि श्री प्रमाण सागर जी ने अपने प्रवचन में कहा कि सम्मदशिखर में जो भी सिद्ध हुए उन्होंने सबकुछ छोड़ा तब सिद्ध हो पाये। तीर्थङ्कर भी समवशरण को छोड़ देते हैं। अपना अनुभव बताते हुए उन्होंने कहा पहली बार जब मैंने गणधर टोंक पर माथा टेका तो मैं आकुलता में डूब गया मेरा कल्याण कब होगा। मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि शाश्वत तीर्थराज सम्मदशिखर ट्रस्ट ने एक आधुनिक सुविधाओं से युक्त आवास के निर्माण की योजना बनाई है। ट्रस्ट इस बात का ध्यान रखे कि सुविधा इतनी न हो जाये कि यात्री भगवान् को ही भूल जाये। ध्यान रहे शाश्वत मूल में परिवर्तन नहीं होता, सामयिक मूल में परिवर्तन हो सकता है। शाश्वत ट्रस्ट जिन मूलभावनाओं के लिए बना था उसे न भुलाया जाये। तीर्थक्षेत्र के विकास में जनकल्याण की भावना सर्वोपरि हो। बांध के जल की तरह धन को रोकना तो ठीक है लेकिन उसकी निकासी भी करते रहना चाहिए नहीं तो बांध टूट जाएगा। कितनी ही बाधाएँ उपस्थित हों उनसे मुकाबला करते हुए समुचित जनकल्याण कार्य करने चाहिए। सम्मदशिखर को जैनों का बोधगया बनाना चाहिए। आप इस निर्माण में संतनिवास पर ध्यान दें रहे हैं यह बहुत अच्छी बात है मुझे बहुत खुशी है। सभी जैनसंस्थाओं को इकट्ठा करके युवाशक्ति को जोड़कर एक मंच तैयार करें।

श्री किशोर जैन
महामंत्री

विदेशों में धर्मप्रभावना

गतवर्ष की भाँति इस वर्ष भी पर्युषण पर्व में श्रमण संस्कृति संस्थान, सांगानेर (जयपुर) के शिक्षक पं. राकेश जी जैन कुवैत में धर्मप्रभावना हेतु गये थे।

वहाँ दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों समाजों ने समन्वितरूप से 18 दिन तक पर्युषण पर्व मनाया। 18 दिनों तक अलग-अलग स्थानों पर प्रवचन हुए।

कार्यक्रमों में सुबह-पूजन तथा महिलाओं की कक्षा, दोपहर में बच्चों की कक्षा (जिसमें 30 बच्चे थे), तथा रात्रि में 10 मिनट णमोकार मंत्र की जाप तथा 1 घण्टे

प्रवचन के पश्चात् विविध सांस्कृतिक कार्यक्रम सम्पन्न हुए।

आशीष जैन 'बण्डा' सागर (म.प्र.)

श्री प्रवेश जैन का सुयश

श्रीमती शिमला जैन एवं श्री प्रवीणचन्द्र जैन वरिष्ठ प्रबन्धक, यूको बैंक, इतवारी नागपुर (महाराष्ट्र) के सुपुत्र श्री प्रवेश जैन ने केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा-मण्डल की दसवीं की परीक्षा में 93.6% अङ्क प्राप्तकर प्रशंसनीय सफलता प्राप्त की है। बधाई। इस उपलक्ष्य में 'जिनभाषित' को 250 रुपये का दान प्राप्त हुआ। धन्यवाद।

सम्पादक

पं० नाथूलालजी शास्त्री का अवसान

जैनागम की आत्मपहचान पण्डित नाथूलालजी शास्त्री जिन्होंने पाप कर्म तजकर पुण्यकर्म को अपनाया, दिगम्बर जैनसमाज की राष्ट्रीयधरोहर, श्रावकधर्म को सुवासित करनेवाले मूर्धन्य विद्वान् संहितासूरि पण्डित नाथूलालजी शास्त्री का हंस पिंजरा विच्छेद रविवार 9 सितम्बर 2007 को दोपहर 12.15 बजे 97 वर्ष की आयु में मोतीमहल, सर हुकमचंद मार्ग, इन्दौर में हो गया।

निर्मलकुमार पाटोदी

पं० नाथूलालजी शास्त्री विद्यावर्द्धन पुरस्कार- आलेख प्रतियोगिता

दिगम्बरजैन महासमिति मध्यांचल द्वारा विद्यावारिधि, सिद्धांताचार्य, श्रुतयोगी, संहितासूरि पं० नाथूलालजी शास्त्री (1.8.1911-9.9.2007) की पुण्यस्मृति पर विद्यावर्द्धन पुरस्कार आलेख प्रतियोगिता आयोजित की जावेगी।

यह पुरस्कार उन दो मनीषी चिंतक विद्वानों को प्रदान किया जावेगा जिनके प्रचलित सामाजिक/धार्मिकपरम्पराओं एवं मान्यताओं की आगमसम्मति एवं वैज्ञानिक अवधारणा परक शोध-आलेख, निर्णायक मण्डल द्वारा अनुशंसित करने के पश्चात् प्रतिवर्ष 9 सितम्बर को प्रदान किये जायेंगे।

आलेख हेतु विषय की घोषणा 'पुरस्कार समिति' द्वारा नवम्बर, दिसम्बर 2007 में की जावेगी। विद्वत्जन अपनी प्रविष्टियाँ मार्च तक समिति को प्रेषित कर सकेंगे।

प्रतिवर्ष आलेख पर प्रथम पुरस्कार रुपये 5000 व द्वितीय रुपये 3000 तथा अन्य श्रेष्ठ चयनित आलेखों को सांत्वना पुरस्कार प्रदान किये जावेंगे। विस्तृत जानकारी विषय की घोषणा के साथ की जावेगी।

माणिकचंद जैन पाटनी
प्रधान सम्पादक-परिणय प्रतीक



मुनि श्री धमासागर जी की कविताएँ

सुबह की तलाश

भाई तुम महान् हो

मैंने आकाश से कहा-
तुम बहुत ऊँचे हो
आकाश ने
मुस्कराकर कहा-
तुम मुझसे भी
ज्यादा ऊँचे हो
मैंने सागर से कहा-
तुम खूब गहरे हो
सागर ने
लहराकर कहा-
तुम मुझसे भी
अधिक गहरे हो
मैंने सूरज से कहा-
सूरज दादा !
तुम बहुत तेजस्वी हो
सूरज ने हँसकर कहा-
तुम मुझसे भी
कई गुने तेजस्वी हो
मैंने आदमी से कहा-
भाई तुम महान् हो
आदमी झट से बोला-
तुम ठीक कहते हो ।

कई बार सोचा
कि सुबह होते ही
पक्षियों का
मधुर गान सुनूँगा ।
कि सुबह होते ही
उगते सूरज
खिलते फूल
और बहती नदी का
सौन्दर्य देखूँगा ।
किसी वृक्ष के नीचे
शीतल शिला पर
अपने में मगन होकर बैठूँगा ।
पर अपने ही
मन के मलिन अँधेरे में
अपने ही जीवन के
आर्त स्वरों में
और अपने ही
बनाये बन्धनों में
घिरा सिमटा मैं
सुबह की तलाश में हूँ ।

‘अपना घर’ से साभार

गोम्मटेश गीत

ब्र. शान्तिकुमार जैन
(मुनिश्री प्रमाण सागर जी संघस्थ)

1

नैना दोनों नील कमल दल,
पूर्ण चन्द्र शोभे मुख मण्डल।
नाक कुसुम चम्पकसी निर्मल,
गोम्मटेश बन्दूँ मैं हर पल॥

2

निर्मल नील गगन सी काया,
कर्ण दीर्घ, भाल चमकाया।
दो बाहु जस सूण्ड दीपाया,
गोम्मेश हम शीश नमाया॥

3

गरदन दिव्य संख सी सोहे,
हिमगिरि फैली छाती मोहे।
कमर कठोर सुदृढ़ मन जोहे,
गोम्मटेश पूजें आओ, हे!॥

4

अनुपम शोभा विंध्याचल पर,
चूड़ामणि वैराग्य महल पर।
शशि त्रिलोक सोहे शीतलकर,
गोम्मटेश बन्दूँ सब दुःखहर॥

5

लिपट लताएँ अतनु के तन,
कल्पवृक्ष सम फल दे भव्यन।
चरण पूजते देव, इन्द्र जन,
गोम्मटेश को शत शत वन्दन॥

6

सर्वभयों से मुक्त दिगम्बर,
निरासक्त शुद्ध बाह्य अभ्यन्तर।
कालानाग, पशुसे न कोई डर,
गोम्मटेश पद नमन करूँ सर॥

7

स्वच्छ दृष्टि वांछा मन नाहीं,
जग सुख मोह समूल नसाई।
भरत मान तोड़ा शिव राही,
गोम्मटेश बन्दूँ नित भाई॥

8

धन, जन, धाम सब परित्यागी,
द्वेष-मोह तज बन वैरागी।
तपी वरष अनशन की आगी,
गोम्मटेश बन्दे बड़भागी॥